chapter. 4

# : चतुर्थ अध्याय :

# : जैनेन्द्र के उपन्यासों में निरूपित नारी-पात्र :

WONDER

:: चतुर्थ अध्याय ::

: जैनेन्द्र के उपन्यासों में निरूपित नारी-पात्र :

प्रास्ताविक :

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का प्रतिपाद्य " प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन " है। पूर्ववर्ती अध्याय में प्रेमचन्द के नारी-पात्रों पर विचार किया जा चुका है, अतः इस अध्याय में जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों पर विचार करने का उपक्रम है, क्योंकि तभी उभय में तुलनात्मक अध्ययन सुनियोजित रूप से किया जा सकता है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र दोनों गांधीयुग के कथाकार हैं। अतः नारी-विषयक उनकी विभावना में उदारता, विशालता और आधुनिकता का होना भी स्वाभाविक है। दोनों ने गांधीयुग की, जैनेन्द्र ने

तो गांध्योत्तर युग की भी , नारी का निरूपण किया है । प्रेमचन्द के उपन्यास प्रायः सामाजिक उपन्यासों की कोटि में आते हैं और जैनेन्द्र के उपन्यास मनोविश्लेषणात्मक है यह एक सुविदित तथ्य है । अतः जहाँ प्रेमचन्द के नारी-पात्र ( कैरेक्टर्स इन एक्शन ) प्रकार के हैं , वहाँ जैनेन्द्र के नारी-पात्र अधिकांशतः चिंतनशील ( कैरेक्टर्स इन कंटेम्प्लेशन ) प्रकार के हैं । इन नारी-पात्रों की तुलना परवर्ती अध्यायों में होगी , किन्तु प्रबंध का विषय तुलना से सम्बद्ध होने के कारण , जैनेन्द्र के नारी-पात्रों पर विचार करते समय जाने-अनजाने कहीं तुलना की ओर ध्यान गया होगा तो उसे स्वाभाविक ही समझा जायेगा ।

## परख " में निरूपित नारी-पात्र :

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक ढंग से भावनाओं का चित्रण करने का सर्वप्रथम प्रयास जैनेन्द्रकुमार ने किया । "परख" जिसका प्रकाशन सन् 1929 में हुआ था , हिन्दी का प्रथम मनोविश्लेषण-प्रधान उपन्यास माना जा सकता है । इसके पात्रों की गहराई में यदि उतरते हैं तो साफ दृष्टिगत होता है कि उसमें एक अविराम संघर्ष है । यह संघर्ष हृदय और बुद्धि के बीच है । वहाँ हृदय व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा बुद्धि सामाजिक रूढ़ियों के पक्षधर होकर आए हैं । जैनेन्द्र के नारी-पात्रों में भी यह द्वन्द्व जगह-जगह मिलता है ।

## कट्टो :

कट्टो "परख" की नायिका है । उपन्यास के नायक सत्यधन से उसका विवाह नहीं होता है , तथापि समूचे उपन्यास में वही वह है । यही तो जैनेन्द्र के उपन्यासों की खासियत है । कट्टो के पिता का निधन बचपन में ही हो गया है । कट्टो का विवाह

बचपन में हो गया था और विवाह के कुछ ही समय बाद उसके उस तथाकथित पति का निधन भी हो गया था । अभिप्राय कि वह बाल-विधवा है । उस समय उसकी अवस्था पांच साल की थी , अतः अपने जीवन की इस कठोर वास्तविकता का बोध उसे नहीं है । सत्य-धन उसी गांव का है । कुछ जमींदारी है । शहर में पढ़ता है । आदर्श-वाद का भूत उस पर सवार था । छुट्टियों में गांव आता है । तब वह अपने पड़ोस की इस लड़की को पढ़ाता है । "कट्टो" नाम भी [illegible] उसीने दिया है । कट्टो गिलहरी [illegible] को कहते हैं । वह अधिक सुंदर नहीं है , पर मानो स्त्रीत्व उसकी आंखों में छनकर भर गया है ।[1]

प्रारंभ में कट्टो-सत्यधन का संबंध गुरू-शिष्या का है , परन्तु कब और कैसे यह संबंध प्रणय में बदल जाता है पता नहीं चलता । सत्य के मन में कट्टो को लेकर द्वन्द्व है , किन्तु कट्टो निर्द्वन्द्व है । वह तो अपना हृदय सत्य को सौंप चुकी है । एक संक्षिप्त-सी चिट्ठी में वह सत्य को लिखती है —" मुझे अबसे कट्टो मत कहना । लाज आती है । ब्याह हो जाय , तब चाहे जो कुछ कहना । उससे पहले नहीं , तुम्हें मेरी कसम । — तुम्हारी कट्टो ।"[2]

सत्यधन ऊपर से आदर्शवादिता का स्वांग रचता है , किन्तु भीतर से वह घोर भौतिकतावादी , सुविधावादी और हिसाबी व्यक्ति है । उसे हम "छद्म आदर्शवादी" चाहे तो कह सकते हैं । कट्टो के समर्पण को ठुकराकर वह अपने मित्र बिहारी की बहन गरिमा से विवाह कर लेता है , क्योंकि गरिमा [illegible] संपन्न पिता की बेटी है । वहां प्रतिष्ठा और पैसा है । कट्टो के यहां उसे क्या मिलेगा ? एक स्थान पर वह सोचता है —" कट्टो की ओर आमद नहीं , खर्च-ही-खर्च है । दूसरी तरफ आमदनी की कई मदें हैं , खर्च लगभग है ही नहीं । प्रतिष्ठा बढ़ेगी , पैसा आएगा , सुख भी मिलेगा और भी बहुत कुछ । दूसरी तरफ सब कुछ खर्च होगा — मिलेगा क्या ?"[3]

जब कि प्रेम में हिसाब-किताब नहीं होता । प्रेम फनागिरी चाहता है । इस संदर्भ में डा. पारुकान्त देसाई साहब का एक दोहा स्मृतिगोचर हो रहा है —

" प्रेम विषय है भाव का , नहीं गणित व्यापार ।
आँखें होती चार हैं , दिखता नहीं लगार ।। "

परन्तु यहाँ तो सत्यधन को बहुत-कुछ दिखता है । वस्तुतः देखा जाए तो सत्यधन का समूचा व्यक्तित्व एक ढुलमुल-व्यक्तित्व है । गांव में जब वह कट्टो के साथ होता है , तो वह उसके उद्धार की बात सोचता है । और जब बिहारी के पिता के प्रस्ताव पर विचार करता है , तब वह गरिमा की ओर झुकता है । किन्तु फिर यदि विश्लेषण किया जाए तो उसका यह झुकना भौतिकता की तरफ , सुख-सुविधाओं की की तरफ , समझौतों की तरफ ज्यादा होता है । वह प्रेमी नहीं , व्यवसायी है । यहाँ हम सत्यधन के चरित्र पर इतना विस्तार से इसलिए लिख रहे हैं , क्योंकि हमारा लक्ष्य कट्टो के चरित्र पर प्रकाश डालना है । कट्टो बरअक्स सत्यधन की विलक्षणता ( कोन्ट्रास्ट ) में खड़ी है । उसका समूचा व्यक्तित्व प्रेम-तत्त्व से ही निर्मित है । सत्य-सा हिसाब-किताब यहाँ नहीं है । प्रेम में फना होना उसे उसे आता है । वस्तुतः बिहारी के अधिक निकट है । बिहारी जब कट्टो को मिलता है और सत्य के प्रति उसके समर्पित भावों को देखता है , तो उसे मन होता है कि ऐसे रत्न को ठुकराने पर वह "सत्य को शाप दे डाले " " । वहीं पर वह सोचता है — " सत्य तू पशु है । "[5] सत्य बिहारी के सामने "इश्श् ! " कट्टो" कहता है । इस पर कट्टो खिजकर कहती है — " किसे कहते हो कट्टो ? कौन है कट्टो ? तुम्हें शऊर नहीं है — कि कौन है , क्या है ... कट्टो , कट्टो । "[6] यह बात कट्टो अपने अधिकार-भाव से कहती है । वह मन से सत्य का वरण कर चुकी है । पर सत्य के मन में क्या चल रहा है , वह तो बिहारी जानता है । अतः लेखक यहाँ एक टिप्पणी देता है — "कट्टो की इस भड़कन पर बिहारी को हुआ कि यहाँ से खिसककर

वह कहीं दूर जा सकता और रो लेता ।"[7]

कट्टो तो सत्य को अनन्य भाव से चाहती है, बल्कि एक तरह से उसकी पूजा करती है, किन्तु सत्य के मन में उसे लेकर द्वन्द्व है। अतः जब कट्टो को इस बात का पता चलता है, वह कहती है — " जो कुछ भी तुम चाहते हो सब में कट्टो की खूब राय है। कट्टो भी उसे खूब चाहती है। उसका पूरा-पूरा विश्वास रखो। तुम्हारी खुशी में उसकी खुशी है। तुम्हारे सोच में उसकी मौत है। अपने कामों में कट्टो की गिनती मत करो, — वह गिनने लायक नहीं है। उसकी खुशी तुममें शामिल है। अब ब्याह करना चाहते हो तो कट्टो तुम्हारी सबसे पहले चाहती है। ओहो, वह कितनी खुश होगी, खूब-खूब खुश होगी। तुम कट्टो को क्या समझते हो। वह तुम्हारी नाखुशी लेकर जिन्दा रह सकेगी? — और क्या समझते हो कि वह तुम्हें समझती ही नहीं। तुम्हें खूब समझती है। तुम जो करोगे, अच्छा करोगे, और कट्टो उस अच्छे में खूब आनंद मनायेगी। तुम तो कट्टो के मालिक हो, — फिर उसकी फिकर क्यों करते हो? —"[8]

इस प्रकार कट्टो प्रेम की मूरत है। उसे प्रेम का मूलमंत्र मालूम है कि उसमें देना ही देना होता है। प्रेम करने वाला लेना नहीं जानता, छिनना नहीं चाहता, जबरदस्ती नहीं चाहता। वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है, अंग्रेजी उसे नहीं आता। पर ज्ञानी क्या प्रेम कर सकते हैं? अतः बिहारी के संदर्भ में लेखक की टिप्पणी देखिए —" बिहारी ने झट से संभाल लिया। सत्य पर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है। सत्य यहां होता तो उसका सिर पकड़कर इस कट्टो के पैरों के पास धूल में इतना घिसता कि बाल सारे उड़ जाते। हाय [redacted] कम्बख्त स्वर्ग के इस अछूते पारिजात की गन्ध को जूठा करके छोड़े जा रहा है।"[9]

सत्य की दुर्बलता कट्टो के चरित्र को और निखारती है । कट्टो हृदय की प्रतीक है तो सत्यधन बुद्धि का । कट्टो में नारी-जीवन की कोमलता, सेवा-परायणता, त्याग, समर्पण की भावना, कमनीयता और भावुकता, उदात्त आदर्शवाद आदि के कारण अत्यन्त आकर्षक एवं मनोरम बन पड़ा है । वस्तुतः देखा जाए तो कट्टो के योग्य तो बिहारी है । परन्तु कट्टो सत्य की हो चुकी है, अतः बिहारी के साथ वह केवल कर्तव्य-सूत्र में बंधना चाहती है । यथा —" कट्टो का बायाँ हाथ बढ़ा, बिहारी का दायाँ । दोनों एक में गुँथ गये । हम दोनों एकाकी यज्ञ की प्रतिज्ञा में एक-दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बंधते हैं, हम एक होंगे, ... एक प्राण दो तन । कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा । ... आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ । एकत्व सार्थक हुआ । (बिहारी ने कहा) — यह महाशून्य साक्षी हो, हम कट्टो-बिहारी सदा एक दूसरे के प्रति कट्टो-बिहारी रहेंगे । न कम, न अधिक ।"[10]

यह विवाह या प्रेम से अधिक उनका पारस्परिक समझौता है । मंज़िल की राह में वे एक दूसरे का सहारा, प्रेरणा और प्रकाश बनते हैं । कट्टो कहती भी है —" हम कब चाहते हैं, लोग इसे ब्याह समझें । हाँ इतना है कि मैं उनके और वह मेरे जीवन में मिल गये हैं । उनसे मेरा और मुझसे उनका जीवन बनेगा और पूर्ण होगा ।"[11] बिहारी और कट्टो का यह समझौता दोनों के जीवन को नये महान दायित्वों के प्रति जागरूक और सचेष्ट बनाता है । सत्यधन अपने आदर्शों से च्युत हो जाता है । बिहारी के पिता भगवतदयाल की मृत्यु के बाद सारी संपत्ति बिहारी को मिलती है । हालांकि उसे इसका मोह नहीं है । वह कहता है —" मेरी है यह किस बात की ? मैंने यह कब कमाई ?"[12] परन्तु सत्य को यह बात नागवार गुजरती है । उपन्यास के अंत भाग में कट्टो सत्य को जब चालीस हजार नगद

दे देती है, तब सत्य " न न न " कहते हुए भी उस रकम को ले लेता है। लेखक की टिप्पणी है -- " इन्हें रुपये की जरूरत थी। वह उनकी आदत में पड़ गये थे। यही कमी थी जिसने "न न न" को कम करते-करते आखिर अनमने मन से लेने को बाध्य कर दिया। अब उनकी झुकने की बारी आई। जो तना रहा, उसे पैसे ने झुकाया। सत्य कट्टो के आगे नमन को बढ़ा।" [13] इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्य ने लेना ही जाना है, देना नहीं और कट्टो ने देना ही जाना है, लेना नहीं।

जैनेन्द्र संभावनाओं के कलाकार हैं। उनके नारी पात्र कई बार रहस्यमय लगते हैं। बाल-विधवा कट्टो का विवाह जैनेन्द्र न सत्य से करवाते हैं, न बिहारी से। वे उसे एक आदर्शवादी मोड़ दे देते हैं। जैनेन्द्र विवाह का आधार भोग नहीं विसर्जन मानते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं -- " विवाह वैसा ही प्रयोग है। संभोग के लिए नहीं है, संभोग को संयत करने के लिए है। इसलिए मैं मानता हूँ कि उसका आधार भोग नहीं है, विसर्जन है। प्रेम के नाम पर साधारणतया जिस विलास का आश्रय लिया जाता है, वह विवाह की सार्थकता नहीं है।" [14] जैनेन्द्र के इन विवाह-संबंधी विचारों को हम कट्टो के संदर्भ में देख सकते हैं।

कट्टो-बिहारी के "प्लेटोनिक मैरेज" के संदर्भ में डा. रमेश जैन लिखते हैं -- " कट्टो का बिहारी से विवाह ( वैधव्य-पक्ष ) साधारण पाठक की समझ से बाहर है। प्रेम की यह खास जैनेन्द्रीय गुत्थी है जो उनके प्रत्येक उपन्यास में सामने आती है। वे हमेशा अपने उपन्यासों में प्रेम की एक ऐसी ही रहस्यमय गुत्थी पैदा कर देते हैं, जिसे सुलझाना आसान नहीं होता। प्रेम किसीसे, विवाह किसीसे और जिससे विवाह उससे प्रायः अशरीरी संबंध। यह विवशता नहीं है, चयन है।

प्रेम का यह रहस्यवाद शरत्-साहित्य में अपरिचित नहीं है , लेकिन जैनेन्द्र ने उसे और गहरा कर दिया है ।" [15]

गरिमा :

गरिमा "परख" उपन्यास की सहनायिका है । वह जाने-माने वकील भगवद्दयाल की बेटी है । बिहारी उसका भाई है । भाई-बहन में एक-दूसरे के प्रति स्नेह और ममता का भाव है । ये लोग शहर के निवासी और ऊँची हैसियत के लोग हैं । गरिमा का परिवार शिक्षित और संस्कारी है । गरिमा बड़ी अच्छी लड़की है । पढ़ने में तेज , बात करने में चतुर और सलीकेदार और देखने में सुभावनी है । गरिमा जब यौवन की देहलीज पर कदम रख रही थी , उन्हीं दिनों में उसके भाई बिहारी का सहपाठी सत्यधन आने-जाने लगता है । सत्यधन और गरिमा एक-दूसरे को चाहने लगते हैं । सत्य के मामले में उसे शुद्ध प्रेम नहीं कह सकते , क्योंकि अपने गाँव की लड़की कट्टो को भी वह चाहता है । कट्टो और गरिमा को लेकर उसके मन में द्वन्द्व है । आदर्शवाद सत्य को कट्टो की तरफ खींचता है और व्यवहारवाद उसे गरिमा की ओर ले जाता है । और अंततः व्यवहार जीतता है , आदर्श हारता है । गरिमा के पिता एक दुनियादार और अनुभवी व्यक्ति हैं । सत्य को देखने के पश्चात् उन्होंने गरिमा की चिन्ता छोड़ दी थी । एक स्थान पर अपनी पत्नी से वे कहते हैं — " देखती हो । अब लड़की को सुख पहुंचाने का काम रह गया है । आगे की चिन्ता परमात्मा ने हमारे ऊपर से उठा ली है ।" [16] बिहारी के द्वारा उन्हें सत्य के द्वन्द्व का पता चलता है , परन्तु उनकी अनुभवी आँखें बराबर देख रही थीं कि आखिरकार वह उसी राह पर आयेगा , जिस पर वे उसको लाना चाहते हैं । बिहारी पर लिखे पत्र में वे कहते हैं — "पर मैं साफ देख रहा हूँ । आयेगा वह उसी राह पर । तुम उससे

कुछ मत कहो । एक बार इधर से आशा का तार टूटा कि वह बेसहारा हो जायेगा । तब उसे मेरे पास आये ही सरेगा ।"[17] और ऐसा ही होता है । कट्टो को बिहारी के भरोसे छोड़कर वह गरिमा से शादी रचा लेता है । गरिमा शहरी , पढ़ी-लिखी , सभ्य और रूपवान तथा शीलवान युवती है । चेहरे पर जहां लज्जा का भाव है , वहां उसमें ईर्ष्या , द्वेष तथा स्पर्द्धा का भाव भी है । कट्टो ने एक सुंदर कढ़ा हुआ तकिये का कवर दिया था । अतः एक स्थान पर वह सत्य से कहती है —" कट्टो को सबकुछ न मानने लगना , तकिये की बात है तो मेरे से ले लो ।"[18]

परन्तु यह ईर्ष्या-भाव केवल तब तक रहता है , जब तक सत्य से उसकी शादी नहीं हो जाती । शादी हो जाती है तो उसका स्पर्द्धा-भाव भी समाप्त हो जाता है । सत्य और कट्टो को लेकर उसके मन में कोई शंका-कुशंका के भाव भी नहीं जगते , उससे उसका आत्मविश्वास झलकता है । सत्य जब गरिमा को लेकर गांव जाता है , तब आत्मीय-भाव से वह उसे मिलती है । यथा —" दो सरिताएं मिल गयीं , लताएं मिल गयीं , दो कोमलताएं मिल गयीं ।"[19] पहली ही भेंट में उसका सारा क्षुद्र धुल जाता है । कट्टो अपनी छठ , मखन , सेवा तथा मीठी-मीठी बोली से अंग्रेजी पढ़ी-लिखी गरिमा को मोहित कर लेती है । यहां तक कि वह कट्टो से कहती है —" कट्टो तू मेरे पास नहीं रह सकेगी ? मेरे साथ घर चली चलो , तो बड़ा अच्छा हो । ऐसी कट्टो बनकर रहना , सब तुझे प्यार करेंगे । तुझे कोई प्यार न करेगा तो किसे प्यार करेगा ।"[20]

गरिमा घरेलू और व्यवहारकुशल गृहिणी है । माता-पिता की मृत्यु के उपरांत वह सारी गृहस्थी को संभाल लेती है । बुद्धि , साहस , होशियारी से नौकरों से कैसे काम लेना यह उसे खूब आता है । एक एडवोकेट के द्वारा जब सत्य को पता चलता है

कि उसके श्वसुर भगवद्दयाल ने अपनी सारी सम्पत्ति अपने बेटे बिहारी के नाम कर दी है, तो उसके हृदय को ठेस पहुंचती है और उनका घर छोड़कर चला जाता है। तब गरिमा पिता के घर में ही रहती है। इससे प्रमाणित होता है कि गरिमा कष्टमय और और संघर्षपूर्ण जीवन नहीं, वरन् सुख-सुविधापूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहती है। दूसरे उसे अपने भाई पर पूरा विश्वास है। तीसरे वह सत्य को भी जान गई है कि मन का गुब्बार निकल जाने के बाद वह लौट आयेगा। सत्य की तरह वह विचलित नहीं होती।

उपन्यास का नायक सत्यधन है। इस लिहाज से तो नायिका गरिमा होगी। परंतु समूचे उपन्यास में कट्टो ही छायी रहती है। उपन्यास में पात्रों के वर्गीकरण की दृष्टि से देखा जाए तो गरिमा को हम वर्गीकृत चरित्र (Typical character) की कोटि में रख सकते हैं। जो गतिशीलता कट्टो में है, गरिमा में उसका अभाव है। अतः उसे अगतिशील चरित्र (static character) भी कह सकते हैं।

## कट्टो की मां :

कट्टो की मां "परख" उपन्यास का एक गौण पात्र है। वह सीधी, सरल और ममतामयी है। वह विधवा है। कट्टो भी बाल-विधवा है। उस समय की सामाजिक व्यवस्था तथा सोच के कारण वह कट्टो के पुनर्विवाह के बारे में सोच भी नहीं सकती थी। परन्तु उन्हें कट्टो की सतत चिन्ता रहती है कि उनके बाद इस लड़की का क्या होगा। वह इस निष्ठुर संसार में पहाड़-सी जिन्दगी कैसे काटेगी। सत्य कट्टो को पढ़ाता है। उससे उनको थोड़ी शाश्वती रहती है। वह सोचती हैं कि अगर सत्य उसे नौकरानी बनाकर भी रख ले तो उसका कुछ कल्याण हो जायेगा। सत्य नौकरानी तो क्या रानी बना सकता था, किन्तु अपने आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर वह गरिमा से विवाह कर लेता

है । सत्यधन के विवाह से वह प्रसन्न होती है और बहू को आशीर्वाद देती है —" बड़भागिन हों, पूतों से सुखी रहे, राज करे ।" 21 इसमें मातृ-हृदय की उछाह के दर्शन होते हैं । एक स्थान पर वह सत्य से कहती है —" बेटा, देख मेरे पीछे उसकी खबरदारी रखियो । मैं तो तेरी माँ ही सरीखी हूँ । तू नहीं होता तो ... तो ... मैं उसे जहर ही देकर जाती । दुनिया ऐसी बुरी है, बेटा कि क्या कहा जाय । तेरे जैसे यहाँ विरले होते हैं — रत्न होते हैं । उन पर ही यह टिकी है, नहीं तो डूब जाती । तेरे में ही मुझे धीरज है ।" 22 संक्षेप में कह सकते हैं कि वह एक ममतामयी गरीब विधवा माँ है । बेटी के ब्याह करने का सुख भी उसके भाग्य में बदा नहीं है, क्योंकि बेटा बाल-विधवा है । उपन्यास के अन्त में सत्य की माँ और गरिमा की माँ की मृत्यु का तो जिक्र है, परन्तु कट्टो की माँ के विषय में लेखक ने कोई संकेत नहीं दिया है ।

सत्यधन की माँ :

यह भी "परख" उपन्यास का एक गौण पात्र है । वह भी विधवा है । सत्य के पिता का निधन हो चुका है । एक बेटा है – सत्य और एक बेटी है जिसका विवाह हो चुका है और वह बाल-बच्चे वाली है । गाँव में रहने के बावजूद वह अपने बेटे सत्य को पढ़ा-लिखाकर एक होनहार वकील बनाती है । वह सदैव अपने बेटे सत्य के लिए एक सुंदर-सुशील बहू की कल्पनाओं में खोयी रहती है । अन्य माँओं की तरह वह भी चाहती है कि उसका बेटा ब्याह कर ले । अतः एक बार वह सत्य से कहती है —" मैंने क्या किया जो अपनी बहू का मुँह नहीं देखूँ, ऐसे ही मर जाऊँगी ।" 23 सत्य उस समय कट्टो को लेकर पेशोपेश में था । अतः कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देता । परन्तु बाद में जब सत्य की शादी गरिमा से होती है तो वह अत्यन्त प्रसन्न होती है । पुत्रवधू के मुँह को देख लेने के बाद संतोषलाभ करते हुए वह आँखें मूंद लेती है ।

गरिमा की माँ :

यह भी "परख" उपन्यास का एक गौण नारी पात्र है । उपन्यास में वर्णित इन तीनों माँओं — कट्टो की माँ, सत्य की माँ और गरिमा की माँ — को हम पार्श्वभौमिक पात्रों के रूप में ले सकते हैं । परन्तु जहाँ प्रेमचन्द के औपन्यासिक जगत में पार्श्वभौमिक पात्रों के चित्रण के भी सूक्ष्म ब्यौरे मिलते हैं, वहाँ जैनेन्द्र के यहाँ उसका अभाव है । बल्कि उन्होंने इनके नाम तक नहीं दिए हैं । इनकी अपनी कोई पहचान नहीं मिलती । यह गरिमा और बिहारी तथा विपिन की माँ है । वकील भगवद्दयाल की पत्नी हैं । परिवार सुखी-संपन्न है । वह घरेलू कामकाज में दक्ष और व्यवहार कुशल महिला है । इनकी तीन संतानें हैं — बिहारी और विपिन दो बेटे और बेटी गरिमा । गरिमा को कालेज तक की शिक्षा दी गई है । उसका विवाह पढ़े-लिखे वकील सत्यधन से हो जाता है तब वह बेटी की ओर से भी निश्चिंत हो जाती है । बिहारी मस्त और फक्कड़ था । उसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं । वह गंवई-गाँव की लड़की कट्टो से विवाह करता है । यह विवाह भी शारीरिक न होकर आत्मिक है, जिसे लेखक ने "वैधव्य-यज्ञ" का नाम दिया है । उनको ये सब बातें पल्ले नहीं पड़तीं । बेटी के विवाह के उपरांत एक दिन अचानक उनकी मृत्यु हो जाती है । अतः अन्य दो माताओं की तरह यह भी एक पार्श्वभौमिक और वर्गीकृत चरित्र है ।

"सुनीता" में निरूपित नारी-पात्र :

"सुनीता" का प्रकाशन सन् 1934 में हुआ था । यह जैनेन्द्रजी का एक बहुचर्चित उपन्यास रहा है । हरिप्रसन्न के मन की ग्रंथि को खोलने के लिए उपन्यास की नायिका सुनीता एक निर्जन स्थान पर उसके सामने अनावृत्त हो जाती है । इस घटना ने तब अनेकों को चौंका दिया था । इसका कथावस्तु पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है । उपन्यास

के नारी-पात्रों में सुनीता, सत्या, माधवी तथा सुनीता की माँ आदि आते हैं। सुनीता उपन्यास की नायिका है। सत्या और माधवी उसकी बहनें हैं। सत्या सबसे छोटी है। माधवी विधवा है और निःसंतान है।

सुनीता :

सुनीता उपन्यास की नायिका है। इस उपन्यास में लेखक ने स्त्री-पुरुष के वैवाहिक तथा विवाहेतर संबंधों की समस्या को प्रस्तुत किया है। सुनीता के पति श्रीकान्त उदार तथा भावुक प्रकृति के व्यक्ति हैं। वकालत के व्यवसाय में है और उसमें जो मिलता है उससे संतुष्ट है। सुनीता उच्चकुलीन, सुखी-सुसंपन्न परिवार की हैं। वह सुशिक्षित, कलाप्रिय एवं रूप-गुण संपन्न नारी है। घर का कामकाज स्वयं अपने हाथों से करती है। श्रीकान्त अनन्य सुंदरी सुनीता को पाकर स्वयं को भाग्यशाली समझते हैं, किन्तु सुनीता को रिझाने और संतुष्ट करने में कुछ असमर्थ-से अनुभव करते हैं। उनके संबंधों को शीत संबंध कह सकते हैं। दूसरी ओर सुनीता को यह अहसास बराबर रहता है कि उसके व्यवहार में ही कोई कमी है। यथा --" वह तो मुझसे यों ही बिगड़ते रहते हैं, लेकिन क्या सच, यों ही बिगड़ते रहते हैं? मैं अपने में क्यों उन्हें बाँधकर नहीं रख पाती? मैंने इन पिछले दिनों अपने में से क्या खो दिया है कि उनके सामने फूल-सी खिल नहीं आती हूं?" 24 दोनों एक ही कमरे में होते हुए भी घुटन महसूस करते हैं। किन्तु ये ही सुनीता-श्रीकान्त जब यात्रा पर निकलते हैं तो संयुक्तता के स्वाद से अभिज्ञ होते हैं। घर में प्रायः चुप रहनेवाली सुनीता समाज, राष्ट्र, नीति, राजनीति आदि सभी विषयों पर श्रीकान्त से बातें करती हैं। इस प्रकार यात्रा में वे दोनों खिलते और खुलते हैं।

श्रीकान्त का मित्र हरिप्रसन्न एक क्रांतिकारी दल से जुड़ा हुआ है। वह फोटोग्राफी तथा चित्रकला में भी दक्ष है।

अनेक वर्षों की यायावरी जिन्दगी के पश्चात् हरिप्रसन्न जब श्रीकान्त के घर आता है, तब सुनीता के स्थिर जीवन में मानों लहरें उत्पन्न होती है। यथा — " तब सुनीता के प्रति श्रीकान्त की आँखें जैसे अधिक खुलीं। सुनीता भी जैसे भीतर से कुछ अधिक खिली। और दोनों परस्पर में मानो कुछ सतर्क, सतर्क्रम, अधिक प्रस्तुत और अधिक प्राप्त होना चाहने लगे।" 25

जैनेन्द्रजी का प्रेम-विषयक दृष्टिकोण अत्यन्त आधुनिक है जो नवजागरण के पश्चात् उद्भवित नारी-चेतना के विमर्श से संलग्नित है। हरिप्रसन्न का खिंचाव सुनीता के प्रति है, इस बात का आभास श्रीकान्त को हो जाता है। तब श्रीकान्त का आदेश और आग्रह भी यही रहता है कि सुनीता हरिप्रसन्न की बात न टाले, उसे घर छोड़कर चले जाने न दे। बल्कि श्रीकान्त इन लोगों को नजदीक लाने के लिए बाहर जाने का खुद बहाना बनाता है। यथा- " सुनीता, तुम मुझे जानती हो, जानती हो कि मैं तुमको गलत नहीं समझ सकता। तब तुमसे मैं चाहता हूँ कि इन कुछ दिनों के लिए मेरे ख्याल को अपने से तुम बिलकुल दूर कर देना। सच पूछो तो इसी के लिए मैं यह अतिरिक्त दिन यहाँ बिता रहा हूँ। हरिप्रसन्न में कितनी क्षमता है। लेकिन उस क्षमता से लाभ दुनिया को क्या मिल रहा है? मैं नहीं चाहता हूँ कि वह क्षमता उसकी व्यर्थ जाए। हमारा प्रयत्न हो कि वह समाज के लिए उपयोगी बने।" 26

श्रीकान्त के लाहोर चले जाने के बाद धीरे-धीरे दोनों का आकर्षण आसक्ति में बदलने लगता है। लेकिन सुनीता में हरिप्रसन्न के लिए कामावेग नहीं है। उसमें हरिप्रसन्न की स्थिति बदलने की प्रबल कामना भर है। वह हरि को घर-गृहस्थी का आदमी बनाना चाहती है। हरिप्रसन्न सुनीता को खींचकर राष्ट्र और क्रान्ति के क्षेत्र में ले जाने का इच्छुक है। सुनीता को घर छोड़ने का आह्वान स्वीकार नहीं है। वह सोचती है — " मैं इस घर से टूटकर जाऊँगी तो जिऊँगी ही नहीं। मैं इस योग्य नहीं

हूं । इसी घर की दीवारों के भीतर मेरा स्थान है । घर बंधन है, तो हो ; लेकिन मुझे तो मोक्ष भी यहां ही पाना है । राष्ट्र को मैं क्या जानूं । पर पतिको मैं जानती हूं, वह मुझे बहुत स्नेह करते हैं ।"[27]

हरिप्रसन्न सुनीता को रात्रि में क्रान्तिकारियों के दल में ले जाने के लिए कटिबद्ध है । श्रीकान्त बाहर है । सुनीता अकेली है । उसका नारी-हृदय रहस्यमय हरिप्रसन्न के भेद को भी निकट से देखना चाहता है, अतः वह उस जोखिम को उठाने के लिए भी तत्पर है । सुनीता में अटूट आत्म-विश्वास है । वह अपनी आस्था को यौन-पवित्रता के परिचित पारम्परिक विधि-निषेधों की अपेक्षा हरि-प्रसन्न के साथ की उन्मुक्तता के प्रति अधिक आकर्षण का अनुभव करती है । हरि के मन में उसे लेकर जो आकर्षण का भाव है उसके संदर्भ में वह स्पष्ट प्रश्न करती है कि वह चाहता क्या है ? यदि वह उसे चाहता है तो ले । सुनीता बिना व्यंग्य और झल्लाहट के स्थिरतापूर्वक निरावरण हो जाती है । सुनीता के इस अप्रत्याशित व्यवहार से काम-कुंठित हरिप्रसन्न हतप्रभ-सा रह जाता है और पश्चाताप का अनुभव करने लगता है । इस पर सुनीता उसे कहती है—"अगर करते हो प्रेम, तो कहो, तुम अपने को मारोगे नहीं । यह तुमसे मैं कहती हूं । मेरी सौगन्ध खाकर कहो कि तुम अपने को नहीं मारोगे । मेरे प्रेम की सौगन्ध तुम अपने को नहीं मारोगे ।"[28]

उपन्यास के अन्त में श्रीकान्त घर वापस आते हैं । सुनीता सारी बातें बताने लगती हैं, परन्तु श्रीकान्त कुछ भी सुनता नहीं है । उन्हें वह मुस्कुराकर कहता है – वट अवर क्वीन कैन डु नो रौंग ।[29] यह एक जैनेन्द्र-रचित प्रेम का उच्च आदर्श है । पत्नी सब घटनाएं बताना चाहती है, पर पति घटनाओं को न सुनकर एकदम विश्वास के साथ उसे बाहों में लेकर उसे क्षमा कर देता है । इस प्रकार हरिप्रसन्न के कारण वे दोनों एक-दूसरे के अधिक सन्निकट पहुंच जाते हैं ।

इस प्रकार जैनेन्द्रजी यहाँ प्रेम के एक नये आदर्श को प्रस्तुत करते हैं । व्यवहार में श्रीकान्त जैसा पति मिलना कठिन है, क्योंकि अपने ही घर में आये हुए अपने मित्र हरि से वह कहते हैं — "मैं उन्हें (सुनीता को) पहचानते-पहचानते भी नहीं पहचानता हूं, पाते-पाते भी नहीं पाया हूं । मुझे मालूम होता है कि तुम्हारे निमित्त से मैं उन्हें अपने निकट पाऊंगा ।"[30] इस प्रकार हरि के कारण उनके दाम्पत्य-जीवन में हर्षोल्लास का भाव अधिक मुखर होता है । सुनीता भी भीतर से जैसे अधिक खिल उठती है ।

सुनीता में लेखक ने नारी के तन-मन के द्वन्द्व को उपस्थित किया है । विवाह-बंधन के भीतर रहकर नारी क्या अपनी प्रेम की मुक्त प्रकृति को कुंठित नहीं कर रही है । उपन्यास में सामाजिक प्रतिबंधों के साथ ही नर-नारी के सहज आकर्षण को दिखाने का प्रयत्न भी किया गया है । सुनीता के लिए घर भी महत्व रखता है और बाहर भी । पति भी और प्रेमी भी । श्रीकान्त को लेकर एक ओर सरल-सीधा पति-प्रेम है और दूसरी ओर हरिप्रसन्न को लेकर अनेक आकर्षणों से भरा प्रिय एवं प्रेमी का प्रेम । वह दोनों ओर विवश होकर रह जाती है और कुछ निर्णय नहीं कर पाती कि किसे चुने । युग और समाज इस चुनाव के लिए तैयार नहीं है । दुविधा और अन्तःसंघर्ष में सुनीता भी उलझती जाती है, पर अन्ततः श्रीकान्त का तरीका अधिक कारगर सिद्ध होता है ।

हरिप्रसन्न और सुनीता दोनों आत्म-मंथन में लिप्त रहते हैं । उपन्यास निरंतर डगमगाता-सा जान पड़ता है । हरि और सुनीता मिलते-मिलते भी नहीं मिलते हैं । यह स्थिति पाठक में "सीमरिंग" पैदा करती है और उसके कुतूहल को बराबर बनाए रखती है । जैनेन्द्र अपने औपन्यासिक कृतित्व में पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों को अधिक महत्व प्रदान करते हैं । यह युगीन स्थितियों के अनुरूप भी है । जैनेन्द्र की नारियाँ वासनाभिभूत होकर भी पुरुष के मन की वासना का परिष्कार करने का नैपुण्य

रखती है ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सुनीता एक विशिष्ट प्रकार का नारी-चरित्र है । उसकी गणना हम वैयक्तिक पात्रों के (Individual Character) की कोटि में कर सकते हैं । उसका चरित्र स्थिर नहीं है । वह निरंतर गतिशील एवं प्रवहमान है । पूरे उपन्यास में उसके कारण एक रहस्यमयता बनी रहती है कि सुनीता आगे किस प्रकार का व्यवहार करेगी । अप्रत्याशितता मानो इसका एक गुण है । इसी अप्रत्याशितता के कारण वह सदैव रहस्यमयी बनी रहती है । अतः सुनीता के आकर्षण का एक कारण उसकी यह रहस्यमयता भी है । इसीलिए डा. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर इस उपन्यास के संदर्भ में लिखते हैं — "'सुनीता' विचार करने को बाध्य करती है कि क्या रचना और उसके चरित्र कुछ अलौकिक हैं, अनोखे हैं, इसलिए कम शक्तिशाली हैं । मुझे लगता है कि कुछ रचनाएँ 'दीपस्तम्भ' की तरह होती हैं और जो दूर होती हैं परन्तु उनके प्रकाश में हम सजग होकर यात्रा ~~करते~~ कर सकते हैं । इसलिए आज लगभग पचास वर्षों के बाद (यह कथन सन् 1984 का है) भी 'सुनीता' काल के उदर में लुप्त नहीं हुई है ।"[31] ई.एम. फारस्टर जिसे रचना की "एवर वर्जिनिटी" कहते हैं, वह "सुनीता" उपन्यास में सुनीता के माध्यम से हम जान सकते हैं ।

सत्या :

सुनीता की छोटी बहन सत्या जो अठारह वर्ष की है एफ.ए. (First Year Arts) में पढ़ रही है । उसने उसमें एक विषय के रूप में गणित भी ले रखा है । पिता संपन्न हैं । सत्या बहुत दुबली-पतली पर तेज है । सत्या और सुनीता में आपस में बहुत पटती है । सत्या पढ़ाई के साथ-साथ नृत्य और चित्र भी सीख रही है । इन विषयों में वह पूरी तरह से डूब जाती है, मानो शेष बातें उसके लिए नगण्य-सी हो जाती हैं ।

उसका चेहरा हमेशा चमेली के फूल की भाँति खिला-खिला सा रहता है । सत्या के ट्यूशन के लिए ट्यूटर की आवश्यकता है । सुनीता उसे हरिप्रसन्न के पास ले जाती है । श्रीकान्त भी यही चाहता है । जब हरि सत्या को देखता है तो उसे लगता है — " वह ऐसे खड़ी है जैसे उसे किसी षड्यंत्र का पता नहीं है , और वह शिकार बनने को तैयार है । उसकी गर्दन में कोमल नवनीत ही है , और कोई पदार्थ नहीं है और वह नवनीत ही उन आँखों में है । उसके पास न अभियोग है , न फरियाद है । वह कहती है कि — अच्छा , कर लो जो करो , कह लो जो कहो , मैं तो बोलती नहीं ।"[32] वैसे खूब बोलनेवाली और चहकनेवाली सत्या हरिप्रसन्न के सामने गुमसुम-सी हो जाती है । उसे यह आदमी अच्छा नहीं लगता है । वह अपने जीजा श्रीकान्त को बहुत ही चाहती है और इसलिए उसे अपनी बहन सुनीता का हरिप्रसन्न के साथ देर-देर तक एकांत में बातें करना , उसके साथ फिल्म देखना [illegible] वगैरह अच्छा नहीं लगता है । एक बार हरिप्रसन्न के लिए खाना बनाने के लिए सुनीता जब उससे कहती है , तो वह सोचती है — " जीजी के आदेशानुसार हरिप्रसन्न की प्रतीक्षा में वह जो खाने-पीने के व्यंजन बनाने में मदद दे रही है , तो क्यों न उन सबको बिगाड़कर रख दे । क्यों किसी चीज में एक साथ ज्यादा मिर्च न झोंक दे और दूसरी में नमक बिल्कुल छोड़े ही नहीं । लेकिन वह ऐसा कर नहीं पा रही है और मानो अपने विरुद्ध होकर सबकुछ बड़े यत्न और एहतियात के साथ वह बना रही है ।"[33] इससे साफ जाहिर होता है कि सत्या को यह बिल्कुल पसंद नहीं है कि उसकी [illegible] जीजी किसी किसी गैरमर्द के साथ ऐसी आत्मीयता का व्यवहार करें । सत्या के संदर्भ में लेखक की यह टिप्पणी उसके चरित्र को समझने में कुछ-कुछ सहायक हो सकती है — " पर अठारह बरस की [इस] लड़की को कभी आप अनजान मत समझ लीजिएगा , नहीं तो खतरा खाइएगा । उसकी आँखें जो देखने को हैं सो तो देखती ही हैं ;

पर उसका मन जो नहीं है वह भी उस देखे हुए में पढ़ लेता है । पर वह खटमिठा मन स्वयं भीतर ही संजोए रखता है, बखेरता नहीं । सत्या को भली तो कह लीजिए, पर किसी और भरोसे आप मत रहिएगा । इस घर में हरिप्रसन्न के आकर रहने को क्या सत्या निरी-निरी घटना, मात्र फैक्ट ही मानकर रह ले ? ऐसी निर्दोष वह नहीं है । जी हाँ, वह उसमें अर्थ भी देखती है । यही क्यों, इस मामले में कुछ यथार्थ, कुछ संदिग्ध की गंध भी उसे आती है ।" 34

किन्तु सत्या अपनी जीजी सुनीता को बहुत चाहती है, और इसीलिए नहीं चाहती है कि इस गैरमर्द के संबंधों को लेकर उसकी जीजी के दाम्पत्य-जीवन में कोई दरार आये । हरिप्रसन्न अपने दल के व्यक्तियों से मिलवाने के लिए सुनीता को बड़े तड़के चलने के लिए कहता है, तब सत्या अपनी जीजी को बरजती है । फिर भी सुनीता जब जाने को प्रस्तुत होती है तो उसे यह उचित नहीं लगता है और वह बराबर आतंकित रहती है कि कहीं इस बीच जीजाजी आ गए तो क्या होगा । इसी कारण जब श्रीकान्त लाहौर से लौट आता है तो वह उन्हें अपने घर ले जाती है और तरह-तरह की बातों में उनके मन को उलझाये रखना चाहती है । इससे प्रतीत होता है कि सत्या एक सुशील, शालीन, गंभीर और समझदार लड़की है । वह हमेशा अपनी जीजी और जीजाजी का हित चाहती है । जीजाजी को चाहने के कारण ही वह हरिप्रसन्न को नापसंद करती है । वह नहीं चाहती कि इस बेहूदे आदमी की वजह से उसके जीजी-जीजाजी किसी मुसीबत में फंस जाए ।

**माधवी :**

माधवी भी सुनीता की बहन है । वह उपन्यास का एक गौण पात्र है । वह पढ़ी-लिखी नहीं है । विधवा और

निःसंतान है । अतः विक्षिप्त-सी रहती है । माधवी की छोटी बहन सत्या अंग्रेजी पढ़ी-लिखी है । उसका बड़े लोगों xx में उठना-बैठना रहता है । सत्या चंचल प्रकृति की है । माधवी का स्वभाव शान्त और संकोचशील है । सत्या कई बार उसकी खिल्ली उड़ाती रहती है । किन्तु माधवी कभी अप्रिय वचन नहीं बोलती है । माता-पिता पर पूर्णतया निर्भर होने के कारण वह प्रायः घर की चार दीवारों में ही रहती है । यहां तक कि घर के किसी सदस्य का उसे प्यार नहीं मिलता है । एक दिन सत्या जब माधवी को कहती है — " जीजी , घूमने चलोगी न ? " [35] तब माधवी को लगता है कि आज इतने सम्मान के साथ मुझे क्यों बुलाया जा रहा है । वह सोचती है कि एक ही घर में माता-पिता अपने संतानों के प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार का बर्ताव क्यों करते हैं ? माता-पिता ही अपने बच्चों में फर्क डाल देते हैं , तो संतान के अंदर भी भाई-बहन के बीच का स्नेह और ममता का भाव लुप्त हो जाता है । लेकिन यहां "जीजी" शब्द के सुनते ही माधवी की आंखों में प्रेम के आंसू उमड़ पड़ते हैं , क्योंकि सत्या की तुतली बोली में उसे अपनी बेटी का आभास होता है । इससे सिद्ध होता है कि माधवी भले ही विक्षिप्त-सी हो , किन्तु उसमें एक माता का हृदय भी है ।

<u>सुनीता की मां :</u>

यह उपन्यास का एक गौण पात्र है । इनके पति उच्चपद पर होने से घर में गाड़ी-मोटर तथा नौकर-चाकर हैं । इनकी तीन बेटियां हैं — सुनीता , माधवी और सत्या । बड़ी बेटी सुनीता का विवाह पढ़े-लिखे वकील श्रीकान्त के साथ हुआ है । माधवी विधवा होने के कारण इनके साथ ही रहती है । अठारह वर्ष की सत्या एफ.ए. करती है । परिवार शिक्षित है , तथापि कुछ पुरानी परिपाटियों से जुड़ा हुआ है । माधवी के विधवा होने के कारण घर में उसकी उपेक्षा हो रही है । जो मां सुनीता और सत्या को

इतना प्यार करती है , माधवी के प्रति उसकी उपेक्षा खटकती है । बल्कि उसे तो और भी प्यार मिलना चाहिए । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सुनीता की माँ एक सामान्य घरेलू किस्म की महिला है , जिसका सारा समय अपने घर के छोटे-मोटे कामकाज तथा बच्चों और पति की चिन्ता में व्यतीत होता है ।

"कल्याणी" में निरूपित नारी-पात्र :

"कल्याणी" भी जैनेन्द्रजी की एक सुप्रसिद्ध कालजयी रचना है । यह गहरे द्वन्द्व से उपजा नारी-जीवन का त्रासदीपूर्ण दस्तावेज है । जैनेन्द्रजी प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा नारी के उभरते व्यक्तित्व और परंपरागत पुरुष-प्रधान समाज में चल रहे उसके शोषण के बीच की टकराहट को अत्यन्त संवेदनशील एवं मा मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हैं । कल्याणी शिक्षिता है । विदेश से डाक्टरी की डिग्री लेकर आयी है । किन्तु वह भी सामाजिक लांछना का लक्ष्य बनती है और उसका भी भावनात्मक शोषण होता है । वस्तुतः समाज में ख्याति-प्राप्त महिलाओं को कई बार चरित्र-हनन की घटनाओं से गुजरना पड़ता है । कल्याणी इस उपन्यास का मुख्य नारी-पात्र है । अन्य नारी-पात्रों में वकील साहब की पत्नी तथा देवलालीकर की पत्नी का जिक्र आता है ।

कल्याणी :

"कल्याणी" उपन्यास की नायिका कल्याणी है । इसमें लेखक ने कल्याणी के द्वारा नारी के "घर" और "बाहर" के द्वन्द्व को चित्रित किया है । कल्याणी विलायत से डाक्टरी पास करके आयी है । वहाँ प्रीमियर युवक से वह प्रेम करती थी , किन्तु उन्हें निराश छोड़कर वह भारत आती है । भारत आकर वह दो बच्चों के बाप ऐसे श्री असरानी से विवाह कर लेती है । असरानी विधुर है । कल्याणी पर वह दुश्चरित्रा होने के झूठे आरोप लगाकर वह उसके साथ विवाह करने में सफल हो जाता है ।

इसके बाद वे डा. अलरानी के रूप में जाने जाते हैं। लेकिन विवाह से उनका मनोरथ पूरा नहीं होता है। कल्याणी प्रीमियर को भुला नहीं पाती और अलरानी को पत्नी का सच्चा प्यार नहीं दे पाती। विवाह महज एक समझौता बनकर रह जाता है।

कल्याणी अत्यधिक भावुक, सहृदय, बुद्धिशाली एवं उदार प्रकृति की महिला है। सिन्धी होते हुए भी वह हिन्दी में सुंदर कविताएं लिख लेती हैं। वह ये कविताएं वकील साहब को सुनाती हैं, जो इस उपन्यास के प्रवक्ता-पात्र हैं और साहित्य में भी दखल रखते हैं।

"कल्याणी" उपन्यास वैवाहिक समस्या और विषम दाम्पत्य जीवन से उत्पन्न मनोग्रंथियों की कहानी है। इस उपन्यास में परिस्थितियों के बंधन में जकड़ी हुई आत्मा का क्रन्दन सुनाई पड़ता है। कल्याणी शिक्षित एवं सुसंस्कृत है। डा. अलरानी जड़-मूढमति और लालची हैं। दोनों के संस्कारों में कोई मेल नहीं है। कल्याणी का शिक्षित मन रूढ़ियों के बंधन में न बंधकर खुले वातावरण में पनपना चाहता है; किन्तु दूसरी तरफ भारतीय आदर्शों को त्यागने की भी वह अभिलाषिणी नहीं है। वह दोनों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा करती है। किन्तु डा. अलरानी में रूढ़िवादी संस्कार बड़ी दृढ़ता से समाये हुए हैं। वह चाहते हैं कि श्रीमती अलरानी एक आदर्श गृहिणी बने। किन्तु वह यह भी चाहते हैं कि कल्याणी प्रेक्टीस भी करे, क्योंकि उस आर्थिक स्रोत को वे खोना नहीं चाहते। दूसरी ओर कल्याणी आदर्श गृहिणी तभी बन सकती है, जब वह डाक्टरनी न रहे। डा. अलरानी के शंकालु स्वभाव के साथ यह "घर" और "बाहर" कैसे सध सकता है? यह कल्याणी के जीवन की समस्या है। "उनकी शादी और डाक्टरी, पत्नीत्व एवं निजत्व कैसे निभे?"[36]

इस प्रकार आर्थिक समस्या उनके दाम्पत्य जीवन में दीवार बनती है । भारतीय नारी-आदर्श के अनुसार स्त्री को घर की सीमा में बंधकर रहना चाहिए , किन्तु डाक्टरी के लिए बाहर जाना भी अनिवार्य है । इस व्यवसाय में अच्छे-बुरे सभी प्रकार के लोगों से वास्ता पड़ता है , किन्तु डा॰ असरानी शंकालु स्वभाव के हैं । ऐसे लोगों को चाहिए कि वे पत्नी से बाहर का काम ही न करायें । किन्तु असरानी तो ढेला और नोट कौंथा दोनों चाहते हैं । ऐसे में जब-तब वे कल्याणी पर दुश्चरित्रता का आरोप भी लगाते हैं । डा॰ भट-नागर और रायसाहब के संबंधों को लेकर भी यही होता है । इसे लेकर वे कल्याणी को जब-तब पीटते भी रहते हैं । अपनी व्यावसायिक व्यस्तता के कारण कल्याणी जब कवि-सम्मेलन में समयसर नहीं पहुंचती है तो असरानी सरे-आम खुले में निर्दयतापूर्वक उसकी पिटाई करते हैं ।[37] किन्तु विवाह के बंधन में बंधकर उसकी मर्यादा का पालन करते हुए , कल्याणी मूक भाव से असरानी के अत्याचारों को सहन कर लेती है । अतः शारीरिक एवं मानसिक यंत्रणा के कारण कल्याणी के भीतर घोर निराशा का अंधकार छाया रहता है ।

"कल्याणी" में जैनेन्द्र आधुनिक शिक्षित नारी की समस्या को लेकर चले हैं , किन्तु शिक्षित और आत्म-निर्भर होते हुए भी कल्याणी का डा॰ असरानी के अत्याचारों और अपमानों को सह लेना कुछ-कुछ विचित्र-सा लगता है । इस संदर्भ में डा॰ नंददुलारे वाजपेयीजी के निम्नलिखित विचार ध्यातव्य रहेंगे — " जैनेन्द्रजी अपने पात्रों को सुस्पष्ट व्यक्तित्व नहीं देते , न उनके जीवन के सुख-दुःख को खुले हुए रूप में हमारे सामने रखते हैं । इससे होता यह है कि उनके पात्र एक बड़ी हद तक रहस्यवादी बने रहते हैं । पात्रों का व्यक्तित्व और उनकी समस्या ही ठीक तरह से समझ में नहीं आती । यह अस्पष्टता यों तो उनके प्रायः सभी उपन्यासों में है , पर "कल्याणी" में इतनी बढ़ी हुई है कि पाठक किसी निर्णय पर पहुंच नहीं पाता ।" [38]

SHRI HANSA MEHTA LIBRARY

भौतिकवादी वातावरण में पली डा. कल्याणी का स्त्री-स्वातंत्र्य का विरोध, त्याग और साधना से परिपुष्ट मातृत्व में विश्वास रखना, एक बार खाना, चार घण्टे पूजा में बिताना, आत्मा, परलोक, मृत्यु-अतीत सत्ता आदि के प्रति जिज्ञासु-भाव, पति को देवता मानकर उसके अत्याचारों को सहना ये सब बातें कुछ अस्वाभाविक-सी प्रतीत होती हैं। पाश्चात्य संस्कृति को विस्मृत कर भारतीय संस्कृति के अनुसार स्वयं को ढालने पर भी जब डा. असरानी संतुष्ट नहीं होते तो असहाय होकर कल्याणी कहती है — "तुम साफ-साफ कह क्यों नहीं देते हो कि तुम क्या चाहते हो ? मुझे तिल-तिल कर बेचना चाहते हो, तो वह तो हो रहा है। आखिरी सांस तक मेरा बिक जायेगा तब भी मैं इन्कार नहीं करूंगी।" [39]

कल्याणी पति के लिए अपना सर्वस्व लुटा देती है, फिर भी पति संतुष्ट नहीं है। इसलिए पति से ऊबकर वह मरना चाहती है, किन्तु पेट के बच्चे के लिए वह मृत्यु का वरण भी नहीं कर पाती। ऐसे समय में वह तपेदिक के रोग का शिकार हो जाती है। उसे लगता है कि " गुसलखाने में किसी सुंदरी और गर्भवती स्त्री की एक पुरुष द्वारा हत्या की जा रही है।" [40] वस्तुतः तपेदिक की बीमारी में कल्याणी का "इगो" ही उस स्त्री के रूप में प्रकट हुआ है। स्त्री का गला दबाकर हत्या करने वाला व्यक्ति उसका पति ही था, किन्तु संस्कारग्रस्त नैतिक भावना की प्रबलता के कारण वह पति की अपेक्षा किसी अन्य पुरुष को ही उसके स्थान पर देखती है। स्त्री की मृत्यु में कल्याणी का भय प्रगट हुआ है। उसे तपेदिक रोग का शिकार क्यों होना पड़ा, इसके पीछे इतिहास है। वह बार-बार कहती है —" मैं अधिक साल नहीं जीऊंगी। ऐसा जीवन कठिन है और व्यर्थ है।" [41] इस व्यर्थता-बोध और निरंतर मानसिक त्रास के कारण ही घुट-घुटकर वह तपेदिक का शिकार होती है। उन दिनों तपेदिक की बीमारी असाध्य मानी जाती थी।

कल्याणी किस प्रकार की नाजुक स्थितियों से गुजर रही है, उसका अन्दाजा तो इस पत्र से मिलता है जो उसे डा. असरानी ने लिखा था — " तुम्हारे कुल तक पर तो धब्बा है। तब तुम्हारा शील क्या ? मैं वकीलों से सलाह ले रहा हूं। कानून हिन्दू स्त्री को हक नहीं देता। पैसे पर अधिकार मेरा है। तुम समझती हो, तुम कमाती हो ? लेकिन तुम आज मुंह भी उठा सकती हो, तो मेरी बदौलत। अपनी डिग्री और काबिलीयत का गर्व न करना। मैं न होता, तो तुम्हें जीने को ठौर न था। खैर, अदालत की सहायता से ही हो, मैं अपना अधिकार प्राप्त करूंगा। पुंश्चली स्त्री दया के योग्य नहीं है। समाज उसकी चिन्ता का दायी नहीं। न तो कानून उसे आश्रय देगा।" [42]

इस प्रकार कल्याणी अन्दर-ही-अन्दर घुटती रहती है। उसकी आत्म-पीड़ा, मानसिक घुटन और अन्तर्मन की वेदना, क्रिया-प्रतिक्रिया कथा के साथ-साथ चलती है। पर दूसरी तरफ डा. असरानी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आर्थिक लाभ के लिए वक्त आने पर कल्याणी की खुशामद भी कर लेते हैं। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं में कल्याणी के बहुमान के लिए वे उत्सुक भी रहते हैं और दान भी देते हैं। विदेश से प्रीमियर के आगमन पर उनके स्वागत का प्रबंध कल्याणी को पति के अनुनय पर करना पड़ता है। यहाँ डा. असरानी की धनलोलुपता प्रकट होती है। यथा —" प्रीमीयर का हमने रुख रखा तो पक्के साल ही पचास हजार बन जायेगा, आगे दूसरे ठेके के काम में और अधिक बन सकता है।" [43] कल्याणी भी पति की अधमता को जानती है, इसलिए वह वकील साहब को कहती है —" मित्रता उन्हें इष्णीय हो लेकिन प्रीमियरपन अभ्यर्थनीय है। यह क्या है ? मेरे स्नेह-संबंध को क्या यह जुए पर लगाना नहीं है ? मेरा तो लाज के मारे मरने को जी चाहता है।" [44]

"कल्याणी" उपन्यास में कल्याणी के निर्दोष होने के प्रमाण उपन्यास में नहीं मिलते। यथा —" मुझे निर्दोष भी न

मानिएगा । स्त्री निर्दोष हो सकती है ? पहला दोष तो यही है कि वह स्त्री है ।" 45 ..." हाँ , वह ताडसी हैं , नहीं तो मैं ... मैं क्या विवाह के योग्य तक थी ।" 46 ..." मेरे बारे में जो भी खोटा सुना हो , सब सही है । मैं निष्पाप नहीं हूं ।" 47 इन कथनों से कल्याणी के बारे में निर्णय देना कठिन लगता है । पर लगता है कि "त्यागपत्र" की मृणाल की भाँति कल्याणी भी एक आत्म-पीड़क चरित्र ( मैसोचिस्ट ) है , और ऐसे लोगों को अपने राईनुमा दोष भी पहाड़नुमा लगने लगते हैं ।

उपन्यास के अन्त में कल्याणी आदर्श और प्रकृति के अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ा में अन्ततोगत्वा प्राण त्याग देती है । कल्याणी की आकस्मिक मृत्यु की सूचना हमें इन शब्दों में मिलती है —" कल्याणी अब नहीं रही । वह कैसे मरी ? मौत में जानने को है भी क्या ? मुझे खबर दोपहर बाद मिली । मालूम हुआ कि सवेरे तीन बजे उन्होंने पुत्र को जन्म दिया । तब स्वस्थ थीं ; लेकिन कुछ देर बाद अचानक हृदय की गति बन्द हो गई । अचानक शायद — चलो खेल समाप्त हुआ । श्रीधर ने बताया कि अभी दोपहर को लोग अंत्येष्टि से लौटे हैं । मुझे सूचना मिली , तब सब निपट चुका था ।" 48

इस कथन से यह साबित होता है कि कल्याणी मुक्त और विशुद्ध प्रेम चाहती है । इसलिए शोषण के इस पिंजरे में बन्द वह असहाय पक्षी की भाँति तड़प-तड़पकर मर जाती है । लेकिन नारी को अधिकारों के लिए लड़ना होगा । दबने वाली नारी अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं कर सकती । वरना इन परिस्थितियों में "दब्बू" नारी कल्याणी की तरह मर तो सकती है , पर कुछ कर नहीं सकती । लेखक कल्याणी के चरित्र द्वारा यही संकेतित करते हैं । कल्याणी आत्मपीड़क ( मैसोचिस्ट ") चरित्र है और ऐसे लोग मरते मर जाते हैं , पर उफ नहीं करते । दुनिया भर की पीड़ा अपने पर ओढ़ लेते हैं । किसीको भी ठेस नहीं पहुँचाते ।

वकील साहब की पत्नी :

वकील साहब की पत्नी "कल्याणी" उपन्यास का एक गौण पात्र है । वह एक मध्यवर्गीय घरेलू किस्म की महिला है । पतिने वकालत के व्यवसाय में अच्छा कमाया है । उनका अपना घर-परिवार है । हवेली है । एक बेटी है । घर-गृहस्थी के इन छोटे-छोटे सुखों में वह प्रसन्न है । वह एक स्वाभिमानी स्त्री है । पति की आमदनी में गुजारा करना श्रेयस्कर समझती है । अतः कल्याणी जब बच्चों के लिए कीमती चीज-वस्तुएं भेजती है, तब उन्हें गुस्सा भी आता है — " अमीर कोई होगा, तो अपने घर का होगा । उसमें गुमान करने की क्या बात है ? "[49] वस्तुतः अमीरी की बात को लेकर भड़कना उनका स्वभाव हो चुका है । इस संदर्भ में वकील साहब का कथन है — " असल में किसीको अमीर सुनकर पत्नी में बिगाड़ हो आता है । वह अमीरी से उदास हो चुकी है । देख चुकी है कि मैं जो हूं उसके अतिरिक्त नहीं हो सकता । अमीर बनने के उनके उपदेश और मेरे स्वप्न ठंडे पड़ गए हैं । अब न स्वप्न में और उपदेश में गर्मी शेष है । इससे शब्द की अमीरी भी पत्नी को कानों नहीं सुहाती । "[50] वकील साहब की पत्नी पहले तो कल्याणी को नापसंद करती थीं, क्योंकि कल्याणी के बारे में उन्होंने कुछ लांछनीय बातें इधर-उधर से सुन रखी थीं । किन्तु जब किसी कारणवश ~~कल्याणी वकील साहब~~ उनकी पत्नी कल्याणी के घर आती हैं, तब कल्याणी से मिलकर उसकी सारी भ्रान्तियां भी दूर हो जाती हैं । कल्याणी के विषय में उसकी धारणाएं बदल जाती हैं । यथा — " वह लौटी तो बहुत बातों से भरी थीं । आकर बोलीं- तुमने क्यों नहीं बताया कि वह ऐसी है ? कौन कहता है वह मेम साहब है ? ... कहने लगीं — वह ऐसे मिलीं, जैसे कब की बिछुड़ी कोई स्नेहिल मिली हो । तनिक भी परायापन नहीं मालूम होने दिया । कहने लगीं कि धन्यभाग्य, नहीं तो कौन हमारे यहां पांव रखने भी आता है ? क्रिस्तान जो समझे जाते हैं । "[51] विलायत की पढ़ी-लिखी हैं, किन्तु सभी धर्मों और सम्प्रदायों की छोटी-छोटी मूर्तियां और तस्वीरें उनके कमरे में है । इस प्रकार हम देख सकते

है कि वकील साहब की पत्नी एक भली औरत है । सीधी-सरल है । नारी के संदर्भ में जो स्थापित प्रतिमान हैं, उनके विरुद्ध कुछ सुनती है तो भड़क उठती हैं, किन्तु सच्चाई जानने पर उसे स्वीकार भी करती हैं । ऐसे पात्रों को हम वर्गीकृत चरित्र की कोटि में रख सकते हैं ।

देवलालीकर की पत्नी :

"कल्याणी" उपन्यास में एक गौण पात्र के रूप में देवलालीकर की पत्नी का उल्लेख मिलता है । उसकी मृत्यु टायफ़ाइड की बीमारी से हुई थी । उपन्यास में यह संकेतित हुआ है कि देवलालीकर अपनी पत्नी को बेहद चाहते थे । वह विदुषी थी, सुंदरी थी, इतना ही नहीं एक सुयोग्य गृहिणी भी थी ।

"त्यागपत्र" में निरूपित नारी-पात्र :

"त्यागपत्र" जैनेन्द्रजी का एक कालजयी उपन्यास है । प्रेमचन्द के "गोदान" की तरह जैनेन्द्र का "त्यागपत्र" उनकी पहचान बन चुका है । हिन्दी के यदि दस उपन्यासों का चयन करना हो तो "त्यागपत्र" का स्थान उसमें सुनिश्चित होगा । जैनेन्द्र के लेखन का कीर्तिमान उसमें उपलब्ध होता है । "मृणाल" इस उपन्यास की नायिका है । मृणाल हिन्दी के औपन्यासिक नारी-पात्रों में अजर-अमर है । मृणाल के अतिरिक्त अन्य नारी-पात्रों में मृणाल की भाभी, मृणाल की सहेली शीला, राजनंदिनी, राजनंदिनी की माँ आदि अन्य नारी-पात्र हैं । "त्यागपत्र" की कथा प्रमोद के द्वारा कहलवायी गई है, किन्तु समूची कथा के केन्द्र में मृणाल ही मृणाल है ।

मृणाल :

मृणाल "त्यागपत्र" उपन्यास की नायिका है । इसका चरित्र-चित्रण ही इस उपन्यास की आत्मा है । बचपन में ही मृणाल के माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था । उसके दो बड़े भाई

और दो बड़ी बहनें थीं । बहनें विवाह के बाद प्रसव-संकट में चल बसी थीं । एक भाई ओवरसियर होकर बर्मा चले गये थे और अब उनका घर से कोई संबंध नहीं था । मृणाल अपने बड़े बड़े भाई के साथ रहती है । एक तरह से वे उसके पिता समान हैं । मृणाल से तीन-चार साल छोटा उसका भतीजा है --प्रमोद । बुआ-भतीजे में खूब पटती है । मृणाल के बड़े भाई उसे बहुत स्नेह करते थे और उसकी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने का यथाशक्ति प्रयास करते थे, किन्तु उसकी भाभी को सदैव यह चिन्ता रहती थी कि कहीं भाई का अत्यधिक स्नेह उसको बिगाड़ न दे । अतः भाभी मृणाल के प्रति कुछ-कुछ कठोर-सी रहती थी । इस संदर्भ में प्रमोद का यह कथन विचारणीय है -- " वह संरक्षण ढीला न था और आज भी मेरे मन में उस अनुशासन की कड़ाई के लाभालाभ पर विचार चला जाता है ।"52

मृणाल बाल्यावस्था से ही स्नेह के अभाव और असंतोष के कारण स्कूल से घर में देर से आती थी । अत्यधिक उन्मुक्तता और अत्यधिक अनुशासितता दोनों का बड़ा ही खराब असर बच्चों के जीवन पर पड़ता है । मृणाल के संदर्भ में हम इसे देख सकते हैं । भाभी की सख्ती के कारण उसका अधिकांश समय उसकी सहेली शीला के यहाँ बितता है । फलस्वरूप मुग्धावस्था में ही उसे शीला के भाई से प्रेम हो जाता है । शीला का भाई डाक्टरी का पढ़ रहा है । मृणाल की भाभी को जब इन प्रेम-संबंधों का पता चलता है, तो उनका व्यवहार और भी कठोर और सख्त हो जाता है । एक बार मृणाल जब घर देर से आती है तो भाभी बेतों से उसे पीटती है और उसका स्कूल जाना बन्द करवा देती है । मृणाल के जीवन की त्रासदी का दौर यहाँ से शुरू होता है । समाज-बिरादरी में बदनामी न हो इस आशंका से मृणाल की भाभी जल्दबाजी में उसका विवाह एक दुहाजू व्यक्ति से करवा देती है । "निर्मला" उपन्यास की निर्मला का दुहाजू से ब्याह आर्थिक कारणों से होता है, यहाँ सामाजिक कारणों से मृणाल जैसी एक मुग्धा

मृणाल सर्वथा सुंदर, कोमल और सुशील लड़की को अपात्र के गले मढ़ दिया जाता है। तोताराम की भाँति मृणाल का पति भी अतिशय शंकाशील प्रकृति का है, जिसके कारण आगे चलकर मृणाल की जिन्दगी बरबाद हो जाती है। किन्तु मृणाल की इस दशा के लिए दोषी कौन है? समाज या वह स्वयं। निश्चयतः तत्कालीन रूढ़िवादी समाज तथा उसकी जड़ चेतनाहीन मान्यताएँ ही उसके लिए उत्तरदायी हैं।

भाभी की कठोरता के पश्चात् यदि उसे सुयोग्य पात्र मिलता जो उसे अपने प्यार में सराबोर कर देता तो शायद मृणाल की जिन्दगी सँवर जाती। परंतु पति के रूप में मिलता है उसे एक रूढ़िवादी, जड़ और शंकालु व्यक्ति। मृणाल भी व्यवहारकुशल होती तो शायद निभ जाता। परन्तु उसकी ईमानदारी और प्रामाणिकता ही उसे ले डूबती है। बच्चनजी की ये पंक्तियाँ कितनी सार्थक हैं — "गर छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता; शत्रु मेरा बन गया है छलरहित व्यवहार मेरा।" एक स्थान पर मृणाल प्रमोद से कहती है — "ब्याह के बाद मैंने बहुत सोचा, बहुत सोचा। सोचकर अन्त में यही पाया कि मैं छल नहीं कर सकती, छल पाप है। हुआ जो हुआ, ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्चा होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है।" 53

और इसीलिए वह अपने पति को अपने पूर्व-प्रेम की बात स्पष्टतः बता देती है, हालाँकि वह प्रेम मुग्धावस्था का था, अशरीरी था, प्लेटोनिक था। किन्तु मृणाल का स्पष्टीकरण "भैंस के आगे भागवत" सिद्ध होता है। उस दिन से पति का व्यवहार ही बदल जाता है और वह उसे कुलटा और दुश्चरित्रा समझकर बात-बेबात पर पिटता रहता है। तंग आकर मृणाल भाई-भाभी के पास आती है, परन्तु वे उसे पुनः उसके पति के पास भेज देते हैं। वही सामाजिक मान्यताएँ। काश

माँ-बाप या अभिभावक लड़की के विवाहोपरांत उत्तरदायित्वों को भी समझ पाते, तो ऐसी हजारों मृणालों का जीवन नारकीय होने से बच जाता । हमारे समाज में स्त्री जब तक ससुराल की है, तभी तक मैके की है । ससुराल से टूटी तो मैके से तो अपने आप ही टूट जाती है । [54]

अतः वह सदा के लिए पतिगृह चली जाती है । उसका पति भ्रष्टा और ~~[illegible]~~ कलंकिनी मानकर उसे छोड़ देता है, तब भी वह न कोई प्रतिवाद करती है, न अपने भाई-भाभी के यहाँ जाती है । इस प्रसंग को लेकर मृणाल प्रमोद से कहती है — "मैं स्त्री-धर्म को पति-धर्म ही मानती हूँ । उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती । क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता, तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे ? मुझे देखना भी नहीं चाहते, यह जानकर मैंने उनकी आँखों के आगे से हट जाना ~~[illegible]~~ स्वीकार कर लिया । उन्होंने कहा — "मैं तेरा पति नहीं हूँ", तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती ? पतिव्रता का यह धर्म नहीं है ।" [55]

इस प्रकार उसका पति जब उसे त्याग देता है तो मृणाल उसका भी विरोध नहीं करती । उसे भी वह अपना स्त्री-धर्म समझती है । फलतः बाद में भी उसे लेकर मृणाल के मन में कोई अफसोस नहीं होता । क्या स्त्री को विवाह से पूर्व किसीसे प्रेम करने का अधिकार नहीं है ? उसकी कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं होती ? पति के घर से निकाल दिए जाने पर वह समाज के सामने इस अन्याय के विरुद्ध शिकायत ~~[illegible]~~ या विद्रोह नहीं करती । वह तो स्पष्ट कहती है — "मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती हूँ । समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे ? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ ।" [56]

जैनेन्द्र की नारी पुरानी परंपरा की लकीर से हटकर नयी, पगडण्डी का निर्माण कर रही है । "त्यागपत्र" की मृणाल का आंतरिक विद्रोह इतना तीव्रतम होता है कि पति का घर छोड़कर किसी निम्न-स्तर व्यक्ति के साथ रहकर भी वह अपने को पापिनी नहीं समझती, स्पष्टतया भतीजे प्रमोद को कहती है —" पति है, पर दूसरे पुरुष के आसरे रह रही हूँ । उसके साथ रह रही हूँ । तुम न जानो, मैं यह जानती हूँ । तुम अपनी आँखें ढक लो, लेकिन मुझसे अपना यह पातक निगल जाने को नहीं कह सकते । फिर जिनको साथ लेकर पति को छोड़ आई हूँ, उनको मैं छोड़ दूँ । उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं त्यागा ? उनकी कृपा पर मैं बची हूँ । मैं मर सकती थी, लेकिन मैं नहीं मरी । मरने को अधर्म जानकर ही मैं मरने से बच गई । जिसके सहारे मैं उस मृत्यु के अधर्म से बची उन्हीं को छोड़ देने को मुझसे कहते हो ? मैं नहीं छोड़ सकती । पापिनी हो सकती हूँ, पर उसके ऊपर क्या वेश्या भी बनूं ?"[57] इस प्रकार जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारी बाह्य-जगत की सामाजिक समस्याओं पर ध्यान न देकर अपनी आंत-रिक वैयक्तिक व्यथा एवं समस्याओं पर ध्यान देने लगी है ।

वस्तुतः मृणाल का चरित्र हमारे समाज की तथाकथित नैतिकता-विषयक अवधारणाओं पर प्रश्न उठाता है । मृणाल ने अपनी सच्चाई बता दी, यही उसका अपराध हुआ । अंग्रेजी की वह उक्ति यहाँ सार्थक होती है — " इन मैरिज आईदर यू रीमेन ट्रू आर हैपी । " मृणाल सच्ची बनने गई, तो ठोकर खायी । पति ने छोड़ दिया तो कोयले के उस बनिये के साथ रहने लगी, जिसने आश्रय दिया था । और मृणाल को यह भी मालूम है कि यह बनिया भी उसे ज्यादा दिन नहीं रख पायेगा । प्रमोद से वह कहती है — " तुम समझते हो यह आदमी जिसके साथ मैं रह रही हूँ मुझे ज्यादा दिन रख सकेगा ? नहीं, मैं जानती हूँ एक दिन यह मुझे छोड़कर चला जायेगा । तभी इस कोठरी से मेरे उठने का भी दिन होगा ।"[58] प्रमोद से ही वह कहती है —" मेरे रूप का लोभ उस पर चढ़ता

गया । वह मद हो आया । मुझे उस समय उस पर बड़ी करुणा आई । ... और यह भी ठीक है कि उस समय उसका सर्वस्व मैं ही थी । मैं उसके हाथ से निकलती तो वह अनर्थ ही कर बैठता । अपने को मार लेता, याशंकित होती तो मुझे मार देता । सच कहती हूँ प्रमोद कि उस समय उस आदमी पर मुझे इतनी करुणा आई कि मैं ही जानती हूँ । मैं उसके इस भ्रम को तोड़ न सकी कि उस पर मुग्ध हूँ, ऐसा करना क्रूरता होती ।"[59] इसके पूर्व वह कहती है — "उसका प्रेम स्वीकार करने की कल्पना भी दुर्विसह्य थी ।"[60] केवल दया और करुणा के कारण अप्रेम रखते हुए भी किसीको समर्पित होना, यह मृणाल ही कर सकती है ।

बनिया भी उसे छोड़कर चला जाता है । तब वह उसीका गर्भ ढो रही थी । एक मिशनरी अस्पताल में वह बच्ची को जन्म देती है । बाद में वह मर जाती है । मृणाल को मिशनरी वाले धर्म-परिवर्तन के लिए कहते हैं, परंतु उसके संस्कार उसे वैसा करने से मना कर देते हैं । अन्यथा अच्छी-खासी नौकरी करते हुए वह अपना जीवन व्यतीत कर सकती थी । बाद में एक सम्भ्रान्त परिवार में वह बच्चों को पढ़ाने का काम करती है । वहाँ सब स्नेह और सम्मान देते हैं, पर उसी घर में प्रमोद का रिश्ता होने जा रहा था । मृणाल के लाख मना करने पर भी प्रमोद उन लोगों को अपनी बुआ के बारे में बता देता है । फलतः वह रिश्ता तो टूटता ही है, मृणाल का दाना-पानी भी वहाँ से उठ जाता है । उसके बाद कई साल गुजर जाते हैं । दर-दर की ठोकरें खाते हुए मृणाल को एक गंदी-घिनौनी बस्ती में हम पाते हैं । वहीं पर उसकी मृत्यु हो जाती है । अनेक ठोकरें झेलने के बावजूद उसका आत्म-गौरव कभी कुंठित नहीं होता । वह किसी भी प्रकार की याचना नहीं चाहती, यहाँ तक कि वह प्रमोद की सहायता भी यह कहकर अस्वीकार करती है — "प्रमोद मैं सहायता की भूखी नहीं हूँ क्या ? तुमसे ही क्या सहायता न लूँगी ? लेकिन सहायता का हाथ देकर क्या मुझे यहाँ से उठाकर ऊँचे वर्ग में जा

खिलाने की इच्छा है ? तो भाई , मुझे माफ कर दो । वैसी मेरी अभिलाषा नहीं है । सहायता मुझे इसलिए चाहिए कि मेरा मन पक्का होता रहे कि कोई मुझे कुचले , तो भी मैं न कुचली जाऊं और इतनी जीवित रहूं कि उसके पाप के बोझ को भी ले लूं और सबके लिए क्षमा की प्रार्थना करूं ।" 61

वस्तुतः देखा जाए तो मृणाल एक आत्म-पीड़क [ मेसोकिस्ट ] चरित्र है । दूसरों को पीड़ित करने की अपेक्षा वह स्वयं दुःख उठाने में मानती है । अतः जब उसका पति उसे छोड़ देता है , तब भी वह कोई खास प्रतिरोध नहीं करती । किन्तु यह कहना उचित नहीं है कि मृणाल बेहतर जीवन के लिए कोई प्रयत्न नहीं करती । वस्तुतः जब भी सम्मानित जिन्दगी जीने का कोई प्रामाणिक प्रयत्न वह करती है , समाज की दुटूमेल रीतियां उसके सामने मुंहबाये होकर खड़ी हो जाती हैं । मृणाल बुरे-से-बुरे व्यक्ति में भी अच्छाई ढूंढने का प्रयत्न करती है । वह मानो कबीरजी की इस उक्ति में विश्वास करती है — " बुरा जो देखन मैं चला , बुरा न मिलिया कोई । जो मन टटोला आपणां मुझसा बुरा न कोय ।। " अपने इन्हीं गुणों के कारण इस सच्ची , शुद्ध , पवित्र , साध्वी स्त्री को अनेक प्रकार की लांछनाओं से गुजरना पड़ता है । बाह्यतः वह कलंकिनी लगती है , किन्तु उसकी आत्मा हर अग्नि-परीक्षा से कुंदन की तरह निखर कर निकलती है । मृणाल जैसे पात्र समाज में आमतौर पर नहीं मिलते , किन्तु ऐसे पात्र हो ही नहीं सकते , ऐसा कहना भी ठीक नहीं है । ऐसे पात्रों की सृष्टि के कारण ही जैनेन्द्र को संभावनाओं का कलाकार कहते हैं । डा. चारुकान्त देसाई ने मृणाल के संदर्भ में उपयुक्त ही कहा है — " "मृणाल" में आत्मपीड़न की प्रवृत्ति प्रारंभ से ही मिलती है । स्कूल में दूसरे की शिक्षा [दण्ड] वह अपने पर ले लेती है तथा भाभी के द्वारा पिटाई होने पर भी प्रतिकार नहीं करती । पूरे उपन्यास में वह दूसरों के लिए मरती-खपती रहती है । संसार के प्रति करुणा का सागर उसके हृदय में तरंगायित होता रहता है ,

किन्तु बदले में मिलती हैं ठोकरें ।"[62]

डा. चन्द्रकान्त बांदिवड़ेकर मृणाल के चरित्र के संदर्भ में अपनी सार्थक टिप्पणी देते हुए कहते हैं —" यह एक सुन्दर, संस्कारशील, हिन्दू नारी के विनाश की व्यथा है जिसके लिए जिम्मेदारी बहुत अधिक अंश तक हिन्दू समाज की विशिष्ट मानसिकता है [ वैसे जैनेन्द्र जी के अनुसार ईश्वर है, नियति है, लीला है परन्तु औपन्यासिक जगत के परे ले जाती है ।] ... इस नारी की यह आत्मकथा नहीं है, क्योंकि इस नारी ने जो भोगा है उसका दाहक स्पर्श इतना झुलसाने वाला है कि वह उसके आत्मकथात्मक माध्यम से आता तो शायद "त्यागपत्र" को उसी प्रकार जलाया जाता जिस प्रकार कुछ युवकों ने शरत बाबू के "चरित्रहीन" को जला दिया था । मृणाल की चरित्र-कथा को उसके प्रिय प्रमोद के माध्यम से कहलाकर जैनेन्द्र ने अनेक कलात्मक स्थितियां एवं पहलुओं का निर्माण किया है ।"[63] दूसरे यदि यह कथा मृणाल के द्वारा कही जाती तो उसके उस आत्मपीड़क स्वभाव के कारण वह इतनी सूक्ष्म-व्यंग्यात्मक न होती । डा. रामरतन भटनागर के कतिपय विचारों से असहमति के बावजूद उनके एक महत्त्वपूर्ण विधान को नकारा नहीं जा सकता कि " त्यागपत्र ने सारे हिन्दू समाज को ही अदालत में खड़ा किया है । "

मृणाल की भाभी :

यह "त्यागपत्र" उपन्यास का एक गौण नारी पात्र है । इनका छोटा-सा परिवार है । पति है, पुत्र प्रमोद है और प्रमोद की बुआ मृणाल है । वह एक मध्यवित्तीय घरेलू किस्म की महिला है । उनके पति स्नेहशील एवं प्रेमपूर्ण स्वभाव के हैं । अपनी छोटी बहन मृणाल को वे बेटी की तरह चाहते हैं । मृणाल के प्रति पति का जो स्नेह है, उसे देखकर वह सदैव चिन्तित रहती है —" भाई का स्नेह कहीं मृणाल को बिगाड़ न दें ।"[64] भाभी रूढ़िवादी विचारों की थी, इसलिए अपनी ननद को अनुशासन में कसकर

रखना चाहती थी । वस्तुतः मृणाल के लिए भाभी के मन में कोई दुराभाव नहीं था । वह सामाजिक रूढ़ियों के दबाव में ही यह सब करती है । उपन्यास के प्रारंभ में ही प्रमोद के द्वारा कहलवाया गया है — " माता अत्यन्त कुशल गृहिणी थीं । जैसी कुशल थीं वैसी कोमल भी होतीं तो ? ... मेरी माता के संरक्षण में मेरी भाँति बुआ भी रहती थीं । वह संरक्षण ढीला न था और आज भी मेरे मन में उस अनुशासन की कड़ाई के लाभालाभ के विचार चला करता है । " [65] जब भाभी को ज्ञात होता है कि मृणाल अपनी सहेली के भाई के प्रेम में है, तो उसका व्यवहार बहुत कड़ा हो जाता है और एक बार मृणाल के विलंब हो जाने पर बेतों से उसकी पिटाई करती है । इस घटना के कारण भाभी मृणाल का विवाह एक दुहाजू से कर देती है, जिसके कारण मृणाल का जीवन नरक हो जाता है । पर जैसा कि ऊपर कहा गया है भाभी मन की बुरी नहीं है । जब पति के पास से मृणाल वापस आ जाती है तब उनको भी बहुत बुरा लगता है । उसे दुबारा पतिगृह भेजते समय वह भी उद्वेलित हो जाती है । यथा — " माँ ने द्रवित भाव से उन्हें अपने कण्ठ से लगाकर कहा — " मिनी, मैं तुझे जल्दी बुलाउंगी । वहाँ अपनी गिरस्ती अच्छी तरह संभालना और पति को सुखी करना, मिनी । " ... माँ ने गद्‌गद कण्ठ से भाँति-भाँति के आशीर्वचन कहे । " [66] अतः वह हृदयहीन है ऐसा नहीं कहा जा सकता । वस्तुतः वह एक ऐसी भारतीय नारी है जो समाज-व्यवस्था के ढाँचे में ढलकर उसके अनुरूप व्यवहार करने में ही नारी का श्रेय समझती है । उनको हम वर्गीकृत चरित्र में रख सकते हैं । मृणाल प्रेम और स्नेह की भूखी है ; जब कि भाभी रीति-रिवाज, समाज, इज्जत आदि की भूखी है । मृणाल प्रमोद से जब भी भाभी का जिक्र करती है, "तेरी माँ " शब्द का प्रयोग करती है । अतः बाद में अनेक कष्टों के उठाने पर भी वह भाई-भाभी के घर में पैर नहीं रखती है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाभी एक घरेलू किस्म की स्थिर-चरित्र नारी है । मृणाल की बरबादी के लिए उत्तरदायी होते हुए भी पाठक उनसे घृणा नहीं कर सकता ।

शीला :

यह "त्यागपत्र" उपन्यास का एक गौण नारी पात्र है । वह मृणाल की सहेली और सहपाठिनी है । दोनों में प्रगाढ़ मैत्री है । वे एक-दूसरे पर जान छिड़कती हैं । मृणाल और शीला के चरित्र में हमें विसदृशता ( कोन्ट्रास्ट ) मिलती है । मृणाल जहाँ शांत और भावुक है, वहाँ शीला बड़ी ही नटखट है । मृणाल और शीला में शायद इसीलिए ज्यादा पटती है कि जिन चीजों के लिए मृणाल तरसती है, वे सब शीला में है । मृणाल पर भाभी का अंकुश है । शीला उन्मुक्त है । एक बार शीला गणित के मास्टर की कुर्सी पर पिन चुभो देती है । मास्टरजी को पिन चुभती है तो वे बहुत बिगड़ते हैं । " यह किसकी शरारत है ? वह खड़ी हो जाय ।" तब किसीकी हिम्मत नहीं होती । मास्टरजी सभी लड़कियों को पिटनेक की बात करते हैं, तब मृणाल अपराध अपने सिर पर ले लेती है और मास्टरजी उसकी हथेली पर तीन-चार बेंत लगा देते हैं । शीला तब खूब रोती है । यथा --" उसकी आँखें बहुत फैली हुई थीं । शीला बड़ी पगली लड़की है । मैंने कहा -- " शीला, क्या करती है ? " प्रमोद, तू शीला को जानता है ? शीला बड़ी अच्छी लड़की है । स्कूल से मैं आने लगी, तब और कुछ नहीं तो मेरे गले लगकर रोने लगी । मैंने उसके गाल पर थपत मारकर कहा -- " क्या है शीला ? क्या है ? " वह फफक-फफक कर रोती रही, बोली कुछ नहीं ।" 67 वह एक शरारती, नटखट, माँ-बाप की लाड़ली बेटी है । उसका भाई डाक्टरी में पढ़ता है । बाद में मृणाल उसी भाई को चाहने लगती है । वस्तुतः मृणाल को जिस प्रकार की आज़ादी चाहिए थी, वह शीला के यहाँ थी । कई बार व्यक्ति अपनी मैत्री में भी अपने चरित्र की क्षति-पूर्ति कर लेता है ।

राजनंदिनी :

राजनंदिनी "त्यागपत्र" उपन्यास का गौण नारी पात्र है । राजनंदिनी के पिता डाक्टर हैं । राजनंदिनी सुंदर,

सुशील और पढ़ी-लिखी है । डाक्टर साहब अपनी बेटी का विवाह जाने-माने वकील प्रमोद के साथ तय करते हैं । उनके ही घर में प्रमोद की बुआ मृणाल ट्युशन पढ़ाती है । मृणाल अपने रिश्ते को छिपाना चाहती है, किन्तु प्रमोद उसे उजागर कर देता है । वह राजनंदिनी के माता-पिता के सामने कहता है —" मास्टरनी मेरी बुआ हैं । ... बुआ को मैं बुआ मानता हूँ और मानूंगा ।"[68] प्रमोद अपनी बुआ से कहता है —" मैं छल नहीं कर सकता । विवाह के मामले में तो छल कर ही नहीं सकता । यह जीवन-भर का संबंध है । क्या उसे झूठ पर खड़ा करूं ?"[69] और जो गलती मृणाल ने की थी, वही गलती प्रमोद करता है और रिश्ता टूट जाता है । प्रमोद ने जो कहा उससे डाक्टर साहब को कोई आपत्ति नहीं थी । उन्हें यह रिश्ता मंजूर था —" इसमें बुराई क्या है ? आई सेय यू । व्हाट मोर डु आई वाण्ट ?"[70] राजनंदिनी भी एक गुप्त भेंट प्रमोद से करती है और अपने अनन्य विश्वास से प्रमोद को अनुगृहीत करती है, किन्तु स्थिति में तनाव आता है । राजनंदिनी की माता कुछ दृढ़ता के साथ इस रिश्ते का विरोध करती है और अन्ततः रिश्ता टूट ही जाता है । डाक्टर साहब को इस बात की ग्लानि हमेशा रहती है —" नंदिनी के दूसरे विवाह पर उन्होंने बहुत असंतोष भी प्रकट किया और कदाचित् उसका कुछ दुष्परिणाम भी सुनने में आया था ।"[71] राजनंदिनी की माँ के दुराग्रह या कहिए हठाग्रह के कारण फिर दो जिन्दगियाँ तबाह हो जाती हैं । नंदिनी प्रमोद को चाहने लगी थी । इसका भी बड़ा संक्षिप्त और सांकेतिक वर्णन लेखक ने किया है —" साले-सालियाँ नए नाते से पुकारने लगी लगे थे । राजनंदिनी दो-एक बार सामने पड़ी, तो सिन्दूरिया हो-हो गयी और पल के आगे दूसरा पल वह नहीं ठहरी।"[72] पर सब गुड़ गोबर हो गया । नंदिनी स्नोबिश हुई । प्रमोद भी हुआ । एक बार फिर समाज की जड़ता जीत गई । प्रेम और कोमलता की हार हुई । काश ! प्रमोद एक सुंदर असत्य झेल लेता या कम-से-कम मौन ही रहता ।

राजनंदिनी की माँ :

यह भी "त्यागपत्र" उपन्यास का एक गौण पात्र है । किन्तु जिस प्रकार मृणाल की भाभी भी गौण पात्र होते हुए भी प्रभावक है, ठीक उसी तरह राजनंदिनी की माँ का भी है । ये दोनों "लोग क्या कहेंगे" या "लोग क्या समझेंगे" की फिकर में अपने ही आत्मीयों का अनजाने ही कितना नुकसान कर बैठते हैं, उसे उपन्यास में संकेतित किया गया है । राजनंदिनी की माँ भी एक कुशल गृहिणी है । किन्तु उनकी सोच भी वही रूढ़िवादी है । मृणाल पहले उनको बहुत अच्छी लगी थी । यथा —" हाँ, भली औरत है । गरीबनी है । अच्छा बोलती-चालती है और संतोषन भी है । ... बच्चे तो बहुत ही खुश हैं । दो महीने से लगी हैं, लेकिन हमें तो उसका बहुत सहारा हो गया है । ... अच्छी लड़की है । बात का बुरा नहीं मानती । ... इस ब्याह में उसे बड़ा चाव है । गिरिस्ती का कुछ बेचारी के भाग में था नहीं ।"[73] किन्तु वही भली, बेचारी, गरीबन, संतोषन मृणाल अचानक बुरी और कुलच्छनी हो जाती है जब राजनंदिनी की माँ को पता चलता है कि वह प्रमोद की बुआ है । ये सामाजिक और दुनियादार लोग अपने निजी अनुभव को भी न मानकर "लोककही" को कितना मानते हैं और उसके कारण कितने अनर्थ होते हैं उसका संकेत हमें प्रमोद के इस कथन से मिलता है —" लोग न जाने क्या समझें । मैं आज इसी पर आश्चर्य किया करता हूँ कि "लोग क्या समझेंगे" इसका बोझ अपने ऊपर लेकर हम क्यों अपनी चाल को सीधा नहीं रखते हैं, क्यों उसे तिरछा-आड़ा बनाने की कोशिश करते हैं । लोगों के अपने मुंह हैं, अपनी समझ के अनुसार वे कुछ-न-कुछ क्यों न कहेंगे ? इसमें उनको क्या बाधा है ? उन पर फिर किसीका क्या आरोप हो सकता है ? फिर उन सबका बोझ आदमी अपने ऊपर स्वीकार कर अपने भीतर के सत्य को अस्वीकार करता है — यह उसकी कैसी भारी मूर्खता है ।"[74] यह कथन ही उनके चरित्र की व्याख्या है ।

**"सुखदा" में निरूपित नारी-पात्र :**

"सुखदा" उस समय लिखा गया था , जब देश संक्रमण के दौर से गुजर रहा था । एक ओर स्वाधीनता की निर्णायक लड़ाई जारी थी तो दूसरी ओर पश्चिम से सीधे सम्पर्क के कारण हमारी सदियों पुरानी सोच में क्रान्तिकारी बदलाव आ रहा था । इस नैतिक सोच का परिणाम है सुखदा । यह एक नायिका-प्रधान उपन्यास है और उसके द्वारा ही कहा गया है , उसकी जुबानी । "सुखदा" का प्रमुख नारी पात्र तो सुखदा ही है । इसके अतिरिक्त गौण नारी पात्रों में सुखदा की माँ और नौकरानी आदि आते हैं ।

**सुखदा :**

सुखदा उपन्यास की नायिका है । पैंतीस वर्ष की आयु में भीतर से पूर्णतया टूटी हुई यह क्षयग्रस्त नारी अपनी जीवन-गाथा लिखती है । यद्यपि कहानी में उसके पति कान्त , क्रान्तिकारियों के नेता हरीश ( हरिदा ) , लाल , प्रभात , केदार , कोहली आदि हैं । किन्तु कथा मूलतः कान्त , सुखदा और लाल के प्रणय-त्रिकोण को लेकर चलती है । फिर भी कथा सुखदा की ही है , कान्त और लाल तो उसके उपकरण मात्र हैं । सुखदा संपन्न माता-पिता की इकलौती बेटी है , लेकिन सुखदा का विवाह विलायत जाने को उद्यत युवक से न होकर , डेढ़ सौ रुपये माहवार पानेवाले युवक कान्त से [illegible] होता है । आरंभ में पति से प्राप्त स्नेह और प्रेम से वह मुग्ध होती है , किन्तु जब जीवन की वास्तविकताओं का सामना करना पड़ता है , तो मन में असंतोष और अभाव की लहरें उठती हैं । इससे सुखदा के मन में हीन-ग्रंथि का निर्माण होता है । फलतः गृहस्थी में अनबन शुरू होती है । यथा — " विवाह के कोई डेढ़ वर्ष बाद पहला बालक हुआ । अब मैं गृहस्थिन ही थी , फिर भी मन अतृप्त ही था । स्वप्न लेना मेरा बन्द नहीं हुआ । गृहस्थी चलती थी , बच्चे को

प्रेम से पालती थी , पर मन को संतोष न था ।"75 असंतोष से ही विसंवादिता का भाव उत्पन्न हुआ और तभी से सुखदा के मन में "अहम" का भाव , अपनी स्वतंत्र सत्ता का भाव उभरने लगा । इसकी तुष्टि हेतु वह लोगों को अपने घर बुलाने लगी , किन्तु वह केवल उन लोगों को बुलाती थी जो उससे प्रभावित होते थे ।" वैसे ही लोगों को चारों ओर पाना अच्छा लगता था जो प्रशंसक थे । चाहे वे पीठ पीछे प्रशंसा करते थे या नहीं करते थे ।" 76 ऐसे में सुखदा ने गंगासिंह नामक व्यक्ति को अपने यहाँ नौकरी पर रखा । गंगासिंह का संबंध क्रान्तिकारी दल से था । कुछ समय के बाद वह पुलिस के हाथों गिरफ्तार हो गया । तब से सुखदा के मन में देश और समाज के प्रति दायित्व की भावना जागृत होने लगी । यथा - "उसके बाद से हमारा गृहस्थी का संयुक्त जीवन अनायास दुर्बल होने लगा .. मेरा भी अपना दायरा बना और फैला ।" 77 ... " धीमे-धीमे चार दीवारों के बीच से निकलकर वह बाहर की दुनिया में आ गई । तभी उसे लगता है कि --" देखूँ और दिखाऊँ कि मैं क्या हो सकती हूँ , कि मैं क्या हूँ ।" 78 घर की दासी जो स्त्री बन सकती है , वह मैं नहीं हूँ ।" 79

इस प्रकार सुखदा घर से बाहर आती है । वह क्रान्तिकारी संघ की उपाध्यक्षा चुनी जाती है । फलस्वरूप पति की चिंता और सुध कम होती गई । पति स्वभाव के शांत और स्नेहशील हैं । पत्नी के लिए उनमें आदर और श्रद्धा के भाव हैं । उस पर अधिकार की भावना नहीं है । यहाँ तक कि उस पर अपनी इच्छा का आरोप करने या उसको अपने लिए दुःख देने की वृत्ति भी नहीं है । यहाँ तक कि क्रान्तिकारी दल की सभाओं में सुखदा का परिचय लाल नामक व्यक्ति से होता है और वह उसके स्वच्छंद और रहस्यात्मक चरित्र से आकृष्ट होती है , तब कान्त कहता है --" तुम्हारा मुझसे विवाह हुआ है , हरण नहीं । विवाह में जो दिया जाता है , वही आता है , पराधीनता किसी ओर नहीं आती । सुनो सुखदा ,

स्वतंत्रता तुम्हारी अपनी है और कहीं आने-जाने में मेरे ख्याल से रोक-टोक मानना मुझ पर आरोप डालना है । मुझसे पूछो तो तुम्हें अपने में प्रतिरोध लाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।"[80] सुखदा का कहीं आना-जाना कान्त को बुरा भी नहीं लगता है । यथा —

"मुझको हिसाब में लो ही क्यों ? जो तुम्हारी जिन्दगी है उसे पूरी तरह स्वीकार करो । मुझे इसीमें खुशी होगी । मेरी अपेक्षा तुम्हें तनिक भी इधर से उधर करने की नहीं है । तुमको तुम न रहने देकर मैं क्या पाऊंगा ? तुमको पाऊंगा तो तभी जब तुम हो । इसलिए सुखदा , सभी संशय अपने मन से निकाल दो ।"[81]

सुखदा की इच्छा है कि उसका पुत्र विनोद नैनिताल में ऐसी शिक्षा पाए जैसे अन्य धनवान लोगों के बच्चे पाते हैं । वह अपने जेवर बेचने के लिए तैयार है , स्वयं मजदूरी करने में भी उसे झिझक नहीं है । कान्त इन सारी बातों को आर्थिक और नैतिक दृष्टि से अनुचित समझता है । लेकिन सुखदा में विसंवादिता की भि स्थिति है जिसे लेखक ने उसीके शब्दों में सूक्ष्म विश्लेषण के साथ चित्रित किया है — "मैं नहीं समझ सकती कि उस क्षण मैं क्या चाहती थी , शायद मैं जीतना चाहती थी , हर किसीसे जीतना चाहती थी । क्या कहीं हार का भाव भीतर था कि जीत की चाह ऊपर इतनी आवश्यक हो आई थी ? वह सबकुछ मुझे नहीं मालूम । लेकिन दुर्दम कर्तव्य के संकल्प मेरे मन में सहसा चारों ओर से फूटकर लहक उठे । अपनी परिस्थिति और नियति की सब मर्यादाओं और बाधाओं को तोड़कर ऊपर उठ चलना होगा , ऊपर और ऊपर । कुछ जैसे मुझे रोक न सकेगा , कुछ लौट न सकेगा ।** ऐसा मालूम होने लगा जैसे जो है सबकुछ तुच्छ है , सब शून्य है , मेरी उद्दामता के आगे सब विवश हो चला है । उस समय मेरे स्वामी , जड़ित और चकित , मुझे अपदार्थ लग आये ।"[82] इस तरह हम देखते हैं कि सुखदा में "अहम्" की अभिव्यक्ति सशक्त है , जो आधुनिक युग की ऐसी नारी का प्रतीक है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती है ।

सुखदा को लगता था कि वह सुंदर है, रूपसी है। इस बात का उसे गर्व भी है। यथा — "लोग हैं जो कहते हैं कि सुखदा कैसी सुरमा है। लोग हैं जो इस अभागे तन के दर्शन के लिए आते हैं। तब मैं सोच उठती हूं कि मेरा इस दीवाने [illegible] से कैसे निस्तार होगा — निस्तार कैसे होगा।"[63] यद्यपि ये उसके पश्चाताप के शब्द हैं, किन्तु इनसे उसके उस अभिमान का संकेत जरूर मिल जाता है। सुखदा को रूप का गर्व था, सम्पत्ति की लालसा थी, महत्त्व की आकांक्षा थी, उसमें ममत्व था, अनुराग था और अभिमान था। इन सब भावों के कारण वह स्वयं अपने लिए एक नये जीवन का निर्माण कर लेती है, जिसका विरोध उसके पति भी नहीं करते। बल्कि उन्हें ऐसा लगता है कि सुखदा उनकी पत्नी है, क्रान्तिकारी लाल से प्रेम करती है तो उसमें उन्हें कोई अवरोध नहीं डालना चाहिए। अतः वे स्वयं प्रसन्न भाव से सुखदा के लिए लाल के कमरे में रहने का प्रबंध भी कर देते हैं। जैनेन्द्र की नायिकाएं ही नहीं, नायक भी संभावना के क्षेत्र में ही आते हैं। यहां कान्त भी "सुनीता" के श्रीकान्त की ही प्रतिलिपि-सा लगता है।

सुखदा भी लाल के प्रति आकर्षित होती है। इसका स्वीकार करते हुए वह कहती है — "पति का मुझ पर अडिग विश्वास कवच की भांति मुझे सुरक्षित रखे रहा है। किनारों के बीच से बंधी जिन्दगी का प्रवाह किनारों के साथ थोड़ा-थोड़ा रगड़ लेता हुआ, और कभी मानो क्रीड़ावश उन किनारों के बाहर भी झांक लेता हुआ, चला जा रहा था, कि इतने में बाहर का एक झोंका मुझे छू गया और वह ऐसा आया कि मुझे अवकाश भी नहीं मिला और मैं उसकी हो गई।"[84] सुखदा के इस स्खलन का विश्लेषण स्वयं सुखदा द्वारा इस प्रकार हुआ है — "स्वामी ने प्रतिरोध नहीं किया। प्रतिरोध उन्हें करना चाहिए था। स्त्री को राह देना उसे न समझना है। गति वह उतनी नहीं चाहती, जितनी स्वीकृति चाहती है। स्वीकृति में दूसरे का अपने पर स्वत्व, शायद स्वामित्व भी चाहती है तो इस पर स्त्री का क्षोभ सीमा

नांध जाता है ।" [85]

यही द्वन्द्व सुखदा के मानसिक चरित्र का प्राण है, वह प्रतिरोध चाहती है, बन्धन चाहती है, स्वामित्व चाहती है। यह नारी का प्राकृतिक रूप है। परन्तु दूसरी ओर वह कर्म की स्वतंत्रता भी चाहती है, प्रेम का स्वच्छंद अधिकार भी चाहती है, पत्नीत्व को चाहकर भी वह अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण स्वातंत्र्य चाहती है। सामाजिकता और वैयक्तिकता का यह द्वन्द्व सुखदा में आद्यन्त मिलता है। यह आधुनिक नारी की भी समस्या है। विद्रोह उसी समय तक चलता है जब तक पुरुष कठोर है। परन्तु सुखदा का पति तो अतिरेक की सीमा तक उदार है, ऐसे में उसका नारी-विद्रोह कुंठित हो जाता है।

सुखदा भावुक और कल्पनाशील है। उपन्यास में लाल के प्रति उसका मानसिक आत्म-समर्पण बताया है। शारीरिक समर्पण न होने पर भी वह लाल के साथ कुछ दिन एक ही कमरे में रहती है। ऐसी साहसी, दुरर्षा वीर स्त्री को सरल-सीधा पति शायद व्यक्तित्वहीन लगता है। लाल की ओर आकर्षित होने का यह भी एक कारण है। सुखदा अपने पति में रहस्य, रोमांच, सपने देखना चाहती है, जब कि पति है एकदम शान्त-बैलार। एक स्थान पर सुखदा कहती है —" मेरे मन में उन युवकों की कहानियाँ घूमा करती थीं जो अभी पनप भी नहीं पाये थे कि चुन लिए गए। उनके वीरोचित कारनामे, उनकी रहस्यभरी प्रवृत्तियाँ, उनके षड्यंत्र, उत्सर्ग के लिए उनकी हाँस और राष्ट्र के लिए कटिबद्धता जाने किन-किन रंगों में मेरी कल्पना के सामने उठती थीं और उन सबके बराबर होकर मेरे यह पति कितने नीरस और सामान्य जान पड़ते थे। मुझे मालूम होता था कि यों न चलेगा। पति में यदि कुछ नहीं है तो मुझे ही उठना होगा।" [86] इस प्रकार पति में निष्क्रियता और मानसिक हीनता देखकर सुखदा मानसिक कुण्ठा से ग्रस्त हो जाती है। दूसरी ओर वह लाल के मुक्त स्वच्छंद चरित्र से मुग्ध होकर भी संस्कारवश उधर प्रवृत्त नहीं हो पाती। परिणामतः वह पति

को छोड़कर मायके चली जाती है और वहीं पर दम तोड़ती है। अपने जीवन के अन्त में उसे पश्चाताप होता है — "जान पड़ता है मेरे यह स्वभाव की वृत्ति मुझे वहां ले गई जहां कि पहुँची। और अब यहां घिर गई है, जहां कि हूं। ... जीवन की धारा जिस आदि-स्रोत से चली है, उसको तो किसी भी भांति पकड़ा नहीं जा सकता है।" 87

सुखदा की कहानी अधोमुखी है। अंत से शुरू हुई है। उपन्यास का आरंभ उसके जीवन का अन्त है, जिसमें पश्चाताप की भट्ठी में झुलसती हुई वह कहती है — "अस्पताल में हूं, अकेली हूं। बस नौकर एक साथ है। बच्चे हैं, स्वामी है, पर वे सब दूर हैं। उनकी याद करते डर होता है। किस मुंह से याद करूं ? उन्हें अपने ही हाथों हटाकर दूर कर दिया है, अपने ही हाथों मैंने अपना अभाग्य बनाया है। कभी मेरे सोने की गृहस्थी थी, अब ठौर का भी ठिकाना नहीं है। सब उजड़ चुका है और अपने ही कर्मों मैंने उजाड़ा है। आज यद्यपि मैं जानती हूं कि मुझे छोड़ और कुछ भी नहीं बिगड़ा है, वह गृहस्थी लहलहाती हुई आज भी जुड़ सकती है, पर हाय मैं उसीके योग्य होती तो —" 88

लगता है जैनेन्द्र की नारी की नियति इसी "तो" पर आकर अटकती है। यदि कट्टो के जीवन में बिहारी पहले आता तो ? यदि हरिप्रसन्न और सुनीता मिलते तो ? यदि कल्याणी और प्रीमियर मिल पाते तो ? यदि मृणाल पति को सच न बताती तो, यदि सुखदा समय रहते संभल जाती तो ? बस, यही तो। परंतु "त्यागपत्र" के प्रमोद की तरह कहना होगा — "पर नहीं, उस "तो"-? के मुंह में नहीं पड़ना होगा। पड़े कि गये,। फिर तो सारी कहानी उस मुंह में निगलकर समा जाएगी और उसमें से निकलना भी नसीब न होगा।" 89

<u>सुखदा की मां :</u>

"सुखदा" उपन्यास का यह गौण नारी-पात्र है । वह एक बहुत ही दुःखी हुई महिला है । इनके पति इस दुनिया से चल बसे हैं । इनकी एक बेटी है सुखदा । मां अपनी बेटी का विवाह बहुत बड़े घर में न करके एक सामान्य डेढ़ सौ रुपये माहवार पाने वाले कान्त नामक युवक से करती है । वैसे जिस समय का यह उपन्यास है उसमें डेढ़ सौ रुपये मध्यवित्त परिवार वालों के लिए कम नहीं होते थे । मां ने बेटी के लिए ऐसा वर चुना जो रुपये-पैसों को ज्यादा अहमियत नहीं देता है । कान्त के गुण , स्नेह , भाव , उदारता , संतोष आदि लक्षण मां ने देखे थे । लेकिन सुखदा को यह पसंद नहीं है । पति से असंतुष्ट रहकर वह लाल की ओर आकर्षित होती है । उसके साथ रहती है । बेटी का यह चाल-चलन उन्हें पसंद नहीं है । यथा — " देवता-सा पति तुझे मिला है । उसे तू खायेगी तो दोनों लोक में कहीं तेरे लिए जगह नहीं है । देख , मान में मत रहा कर । लड़की , तू खुद समझदार है । तुझे और क्या समझाऊं ? लेकिन पति तेरा गऊ है , एकदम गऊ । मन में रखना नहीं जानता , सब मुंह पर कह डालता है । ऐसे आदमी को तू नहीं साधकर रख सकती तो और तुझसे क्या होगा ? " 70 लेकिन इन सारी बातों का सुखदा पर कोई असर नहीं होता । वह तो अपने आपको स्वतंत्र रखना चाहती है । इसके कारण पति-पुत्र से बिछुड़कर अन्त में मृत्यु को प्राप्त करती है । अंत समय में उसे बहुत पछतावा होता है , किन्तु "अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत " वाली बात उसके चरित्र पर लागू होती है । उपर्युक्त कथन से ज्ञापित होता है कि सुखदा की मां एक सामाजिक पारिवारिक प्रकार की पति-परायण घरेलू महिला है । अपनी बेटी को वह हमेशा सही सलाह देती है । एक मां की हमेशा यही ख्वाहिश रहती है कि उसकी बेटी का अपना एक भरा-पूरा परिवार हो , उसका अपना संसार हो , और उसमें वह खुश रहे । सुखदा की मां भी यही चाहती है । अन्य स्त्रियों से

वह थोड़ी अलग इन अर्थों में है कि दौलत के प्रति उनके मन में कोई खास आकर्षण नहीं है । वह एक सीधी-सादी और संतोषी स्त्री है । सुखदा की महत्वकांक्षाएं उन्हें कई बार परेशान करती हैं । इस दृष्टि से सुखदा से विलोमी पात्र हम उन्हें कह सकते हैं ।

"विवर्त" उपन्यास के नारी पात्र :

"विवर्त" सन् 1953 का उपन्यास है । जैनेन्द्रजी के अब तक के उपन्यास नायिका-प्रधान रहे हैं, लेकिन यह पहला उपन्यास है जो नायक-प्रधान है । लेकिन यहां भी जैनेन्द्रजी अपना जैनेन्द्रीय स्वभाव नहीं छोड़ पाये हैं । यहां नायक नायिका का पति न होकर उसका पूर्व-प्रेमी है । उपन्यास के आवरण-पृष्ठ पर लिखा गया है कि यह पराक्रमी और तपस्वी पुरुष की कथा है जो हिंसा की राह पर चल पड़ा है । उपन्यास के नायक जितेन के मन में एक ग्रन्थि है, विवर्त है, जिसके रहते वह अमीरजादी प्रेमिका भुवनमोहिनी से विवाह नहीं करता । भुवन का ब्याह होता है नरेश से । वह इंग्लैण्ड-रिटर्न बैरिस्टर है । वह भी "सुनीता" और "सुखदा" के पतियों की तरह अत्यन्त उदार और व्यापक सोच वाला व्यक्ति है । पर उसकी उदारता एक समर्थ व्यक्ति की उदारता है । उपन्यास की कथा भुवन, जितेन और नरेश के बीच गूंथी गई है । उपन्यास के प्रमुख नारी पात्रों में भुवन, सिम्मी और मैथिली आदि आते हैं ।

भुवनमोहिनी :

भुवनमोहिनी सुंदर, सुशील, सुशिक्षित महिला है । उसके पिता जज है । पत्नी तथा पुत्र की मृत्यु के कारण वे बहुत दुःखी रहते हैं । मोहिनी को वे एम.ए. एल.एल.बी. तक पढ़ाते हैं । उसे खूब लाड़-प्यार से पालते हैं । मोहिनी भी पिता की सेवा में किसी प्रकार की कोर-कसर नहीं रखती । वह हर तरह से उनका ख्याल

रखती है । उसे उनकी इतनी चिन्ता है कि वह सोचती है कि यदि विवाह करके वह चली जाएगी तो उनकी देखभाल कौन करेगा और इसीलिए वह विवाह भी नहीं करना चाहती थी । जितेन भुवन का सहपाठी है । वह उसको प्रेम करती है । जितेन पत्रकार भी है और मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है । जितेन को लगता है कि भुवन अमीरजादी है और उसका जीवन तो अभावग्रस्त है । ऐसे में उनका प्रेम नहीं निभ सकता । इसी बात को लेकर उनमें फांक पड़ जाती है । मोहिनी एक स्थान पर कहती है — " जानती हूं , तुम विवाह नहीं चाहते थे , प्रेम चाहते हो । ... लेकिन तुम प्रेम भी नहीं चाहते । यह प्रेम है जो मुझको नहीं देखता , अमीरजादी को देखता है । ... जितना मैंने चाहा कि धर्म की गांठ देकर जन्म-जन्मांतर के लिए जीवन की इस यात्रा में मैं तुम्हारी संगिनी हो जाऊं । पर तुम , तुम्हारा ... आई थी कि चली चलूंगी , सामने देखूंगी , पीछे पर ध्यान नहीं दूंगी । पर क्या करूं ? मोटर , बंगले तुम्हें चुभते हैं । कहीं तुम उन्हें ही तो नहीं चाहते , नहीं तो भूल क्यों नहीं पाते । " [1] और मोहिनी का विवाह बड़े घर के बेटे नरेशचन्द्र से हो जाता है । इसके बावजूद भी मोहिनी के मन पर जितेन छाया हुआ है । जितेन मोहिनी को न पाकर दफ्तर से इस्तीफा देकर शहर छोड़कर कहीं चला जाता है । चार साल के बाद हम उसे एक क्रांतिकारी के रूप में पाते हैं । पंजाब मेल को उलटकर वह जज नरेश के यहां ही आश्रय पाने आ जाता है । उसके मन की गहराई में कहीं यह लालसा भी है कि क्या मोहिनी के मन में उसके लिए अब भी कोई प्रेम अवशिष्ट है । वह ज्वर-ग्रस्त है । मोहिनी पूरे मनोयोग से उसकी सेवा करती है । यहां उसके ममतामय स्वभाव का हमें पता चलता है । जितेन की देखभाल के लिए वह एक सुयोग्य नर्स का भी प्रबंध करती है । जितेन के प्रति वह निर्दय नहीं हो पाती , क्योंकि वह अनुभव करती है — " पति तो हैं और वह ठीक हैं , जानते हैं कि उनकी दुनिया है , उनकी मैं हूं । पर यह व्यक्ति आज न जाने

किस बल पर यह मानकर कि मैं उसकी हूँ , यहाँ आ गया है । आ तो गया है , पर संदेह में पड़ गया है कि मैं भी उसकी हूँ कि नहीं । मोहिनी के मन में गहरी [illegible]पीड़ा उठी । जितेन इस समय निरा निपट एकाकी है , उसका कोई नहीं । कब कोई था ? अनाथ जन्मा , अनाथ पला और अनाथ पढ़ा ।" 92

विवाह-पूर्व मोहिनी जितेन को चाहती थी , किन्तु नरेश के साथ विवाह के बाद वह अपनी गृहस्थी में रम जाती है । उसकी पति-प्रतिबद्धता में तब एक व्याघात आता है , जब जितेन वापस उसके घर में पनाह लेता है । जितेन को लेकर उसके मन में द्वन्द्व चलता है कि कि उसके संदर्भ में पति को बताए या न बताए । वह निश्चय भी करती है और फोन करके नरेश को बुलाती भी है , परंतु कुछ कह नहीं पाती , तब नरेश की अनुभवी निगाह यह ताड़ लेती है कि अखबार में जिस क्रान्तिकारी के बारे में छपा है वह यही है और शायद मोहिनी का पुराना प्रेमी हो । अतः मोहिनी के मानसिक-संघर्ष को दूर करने के लिए उदारतावश वह कहता है — " मोहिनी मुंह छिपाने की तुम्हारे लिए कोई बात नहीं । प्यार का हक सबको है । तुम्हारा, मेरा , उसका सबका — अच्छा , मैं चलूं ?" 93

मोहिनी एक पति-निष्ठ नारी भी है । विवाह के बाद वह पूर्णतया पति और गृहस्थी में रम जाती है और पति भी पूर्णरूपेण उस पर विश्वास करता है । जितेन के घायल होकर उसके यहां आने पर वह उसे आश्रय तो देती है , पर साथ ही इस बात का भरपूर ख्याल रखती है कि पति और घर की मान-मर्यादा पर किसी प्रकार की आँच न आवे । एक बार जितेन के पत्र के आने पर वह उसे साफ तौर पर कह देती है —" आपको ख्याल नहीं है यह घर किसका है ? मोहिनी का है , ठीक है , लेकिन औरों का भी है । उनका (उसके पति का ) पहले है और उनके कारण मोहिनी का है ।" 94

उपर्युक्त कथन से मोहिनी की पति-निष्ठा तथा उसके आत्म-विवेक का ज्ञान होता है। जितेन जब उसे कहता है कि वह उसके बारे में अपने पति को कुछ भी न बतावे, तब इस बात के लिए वह साफ इन्कार कर जाती है कि ऐसा वह नहीं कर सकती। यथा — "स्वामी के प्रति अविश्वासिनी मुझे नहीं बनना है, अब जितेन तुम देख लो, रहना हो रहो, नहीं रहना हो जाओ। यह भुवनमोहिनी वही है लेकिन पत्नी भी है, इससे वह स्वामिनी है, पराधीन है।" [95] और समय आने पर मोहिनी नरेश से कुछ भी नहीं छिपाती। जितेन द्वारा चोरी की बात तो वह करती ही है, साथ ही यह भी स्वीकार करती है कि जितेन उसका परिचित नहीं, प्रेमी भी था। पति पर अटूट विश्वास होने के कारण ही वह उनसे जितेन को बचाने का अनुरोध करती है। नरेश मोहिनी से कभी कुछ पूछता नहीं है। उसकी इस उदारता से मोहिनी को शिकायत है। यथा — "पूछा भी नहीं तुमने कि मैं बात क्यों छिपाए रही?" [96] नरेश की आँखों में प्रेम, विश्वास और आर्द्रता देखकर वह स्वयं को अपराधी अनुभव करती है और उससे माफी भी माँगती है। मोहिनी के सेवाभाव, पति-प्रेम तथा पति-पत्नी के परस्पर के विश्वास के कारण ही जितेन अन्ततः परास्त होता है। यह विश्वास ही है जिसके कारण मोहिनी के मन में अपने पति के प्रति मान होता है। प्रतिरोध होता तो शायद मोहिनी जितेन की ओर अधिक सरक जाती, परंतु नरेश की उदारता और सहानुभूति ही उसकी गृहस्थी के बंधनों को दृढ़ करते हैं। जैनेन्द्र कदाचित् यही स्थापित करना चाहते हैं कि पति-पत्नी में प्रेम और विश्वास ही उनके गार्हस्थ्य-जीवन की दीवारों को मजबूत बनाते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भुवनमोहिनी सचमुच में भुवनमोहिनी है। उसमें अन्तर्द्वन्द्व है, जो सुखदा में नहीं थी। उसमें न्याय, विवेक, पति और परिवार प्रतिबद्धता के भाव हैं। वह एक ममतामयी नारी है। आदर्श पत्नी और प्रेमिका है। साथ ही उसमें दृढ़ता, व्यवहारकुशलता, उदारता जैसे असाधारण गुण हैं।

तिन्नी :

तिन्नी "विवर्त" उपन्यास का एक अनोखा और महत्त्वपूर्ण नारी पात्र है। इसे लेखक ने क्रान्तिकारी नायक जितेन की प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है। जितेन अपने कामकाज के लिए तिन्नी को उसके गरीब पिता से खरीद लेता है। वह अनन्य भाव से जितेन की सेवा करती है। यद्यपि वह जितेन की ब्याहता पत्नी ह नहीं है। और जितेन भी तिन्नी को जो प्यार देता है, उसे सहानुभूति कहना ही ठीक होगा। जितेन तो मोहिनी को प्यार करता है और उसे न पाकर ही वह इस विध्वंस के रास्ते पर आया है। तिन्नी जन्म की दुखिनी, अभागिन, अनाथ और अनपढ़ लड़की है। किन्तु उसका हृदय विशाल और प्रेममय है। वह सेवा तथा ममता की मूर्ति है। स्नेह उसके नैनों से हर पल छलकता रहता है। उसके व्यक्तित्व का गठन सेवा, कर्तव्यनिष्ठा और सात्त्विकता के उपादानों से हुआ है। तिन्नी का निम्नलिखित कथन उसके व्यक्तित्व को रूपायित करता है —" बहन ! पुरुषों की बात और है। वे तो प्रेम के लिए हैं नहीं। पर हम स्त्रियां प्रेम को स्वीकार नहीं करेंगी तो कहां जाएंगी ? ... देख तो बहन ? हम लोगों के पति भी होते हैं, परमेश्वर भी होते हैं। पति को परमेश्वर भी मानने को कहा गया है। क्या यह सब इसलिए नहीं है कि प्रेम का अस्वीकार हमारा धर्म नहीं है।" [97] इस प्रकार तिन्नी के चरित्र के ताने-बाने कुछ-कुछ मृणाल के तानों-बानों से मेल खाते हैं — समर्पण और केवल प्रेममय निःस्वार्थ समर्पण। प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में "कायाकल्प" उपन्यास की लौंगी की तुलना हम तिन्नी से कर सकते हैं। लौंगी ठाकुर हरिसेवक की रखैली है, तो तिन्नी तिन्नी को जितेन ने उसके बाप से खरीद लिया है, पर अनन्य भाव से वह जितेन की सेवा करती है। इतनी सेवा तो कोई ब्याहता स्त्री भी नहीं कर सकती। इस प्रकार उपन्यास में उसका स्थान गौण होते हुए भी जैनेन्द्र के नारी पात्रों में वह एक अमिट छाप छोड़ जाती है।

मैथिल्डे :

"छिवतीं" उपन्यास का एक गौण नारी पात्र है । वह एक प्रोफेशनल नर्स है । नाम तो उसका मैथिल्डे है पर जितेन और मोहिनी उसे मिथिला कहते हैं । मोहिनी के परिवार से वह भलीभाँति परिचित है । जब आवश्यकता होती है, उसे ही बुलाया जाता है । जब घायल जितेन मोहिनी के यहाँ आता है, तो उसकी तिमारदारी के लिए भी उसे ही बुलाया जाता है । वह ईमानदार, नम्र और कुशल है । उसके संदर्भ में उपन्यास में एक स्थान पर टिप्पणी दी गई है — "नर्स थी कुछ अलग और विचित्र थी । बेहद पाबन्द पर बेहद बन्द । उसकी आँखें थीं । जबान न थी । यह बात कि स्त्री के जबान न हो, सहसा विश्वसनीय नहीं है । पर इस नर्स के बारे में यह विश्वास करना ही पड़ता था । आँखों से देखती थी कि मरीज मरीज नहीं है, कहीं कुछ अतिरिक्त भी है । इस अतिरिक्त में वह नहीं उतरना चाहती थी । लेकिन वह अतिरिक्त कुछ उसकी आँखों पर ऐसा आकर पड़ता था कि आँखों को उघाड़ना ही चाहता हो । आँखें अगर देखती थीं तो कान उसके सुनते भी थे । जान पड़ता था कि बोलने में जो शक्ति लगती है वह उसके देखने और सुनने के काम आ जाती थी । आँखें भीतर तक देखती थीं और कान निःशब्द को भी सुनते थे ।" [98] उपर्युक्त सांकेतिक कथन से प्रतीत होता है कि मैथिल्डे जितेन और मोहिनी के संदर्भ में बहुत कुछ जानने लगी थी । हर चीज पर वह ध्यान रखती थी, परंतु अपने मुँह से वह कुछ भी नहीं कहती थी । उसे मोहिनी के घर में जितेन जो चोरी करता है उसकी भनक पड़ जाती है और वह यह बात अपने स्वभाव के विपरीत जाकर कहने के लिए उद्यत भी होती है किन्तु मोहिनी और नरेश दोनों ही उसकी बात को बीच में से काट देते हैं और उसका धन्यवाद करते हुए कहते हैं कि अब उन्हें उसकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं है । उसका हिसाब कर दिया जाता है । मिथिला को यह अच्छा नहीं लगता है । कुछ संकेत दिए गए हैं । यथा — "मिथिला के मन में पराजय और विद्वेष के भाव उठने लगे । ..."

उसका मन अंदर ही अन्दर झुंझला रहा था, जैसे उसे हार मिली हो, उसकी बुद्धि के फन को छेड़ दिया गया हो।" 99 पर मैथिल्डे जहाँ एक ओर प्रोफेशनल नर्स है, वहाँ सत्य के प्रति उसके मन में गहरा आग्रह भी है और इसीलिए पुलिस आफीसर चड्ढा से भी मिलती है, पर वह उसकी बात को अनसुनी कर देता है और समझता है कि वह नर्स बदसलूकी की कोई शिकायत लेकर आई है। जब जितेन पर मुकदमा चलता है तब वह गवाही भी देती है। इस संदर्भ में लेखक की टिप्पणी है —" मिथिला ने अपनी ओर से मुकदमे की गवाही में सच कहने में किसी ओर से कमी नहीं की। वह माया-मोह में नहीं रहती, यथार्थ सच से ही उसे प्यार है। पर फिर भी फांसी नहीं हो सकी (जितेन को), इसने उसके निकट सिद्ध कर दिया है कि सच के लिए यह दुनिया नहीं है। पर उसका पुरस्कार दूसरी दुनिया में है और वह अवश्य मिलेगा। इस संतोष को उससे कौन छीन सकता है।" 100

"व्यतीत" उपन्यास में निरूपित नारी-पात्र :

"व्यतीत" उपन्यास का प्रकाशन सन् 1953 में हुआ था। यह भी एक आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास का नायक जयंत अनिता से प्रेम करता है। जयंत एक प्रतिभाशाली व्यक्ति है। काम्पीटीशन में बैठना चाहता था, परंतु प्रेम में मिली असफलता के कारण वह गुमराह हो जाता है। उसके बाद तो उसके जीवन का भटकाव शुरू होता है। वह चन्द्री नामक युवती से विवाह भी करता है, परंतु अनिता को लेकर उसके मन में जो गांठ है उसके कारण चन्द्री को वह प्रेम नहीं दे सकता। उपन्यास के अंत में अनिता उसकी इस ग्रंथि को खोलने के लिए आत्मसमर्पण के लिए भी उद्यत हो जाती है। यथा —

" जयंत रात की बात भूल जाना। मैं सुध में न थी। अब सुध में हूँ। मैं सामने हूँ मुझको तुम ले सकते हो। समूची को जिस विधि चाहो ले सकते हो। स्त्री सदा यह नहीं कहती। बेहयाई की हद

पर भी नहीं कहती । लेकिन मैं दुख रखकर कहती हूं ।" [101] लेकिन जयंत उस समर्पण को भी अंगीकृत नहीं करता और गैरिक वस्त्रों को धारण करता है । उसे यह जीवन व्यर्थ भार लगता है । "क्यों कहीं इसे कभी देकर भी नहीं सका , ताकि कुछ पा जाता और यों भटकता न फिरता । लेकिन सुनता हूं , दूसरा भी जन्म है , अब तो उसीमें आस है ।" [102] इस उपन्यास के नारी पात्रों में अनिता , सुमिता , चन्द्री , उदिता , कपिला , नीला , बुधिया आदि मुख्य हैं ।

<u>अनिता :</u>

"व्यतीत" उपन्यास की नायिका अनिता है । उपन्यास का [illegible] नायक जयंत है । अनिता जयंत के पिता के एक घनिष्ठ मित्र की पुत्री है । अनिता और जयंत सहपाठी हैं । जयंत अनिता को प्रेम करता था , किन्तु अनिता का विवाह मि. पुरी से हो जाता है । इस असफलता के कारण जयंत के जीवन की धुरी [illegible] गड़बड़ा जाती है और सांसारिक सफलताओं से विपरीत वह दूसरी ही दिशाओं की ओर उन्मुख हो जाता है । अनिता मि. पुरी से विवाह तो कर लेती है , लेकिन मानसिक रूप से जयंत उसके दिल-दिमाग पर छाया रहता है । वह जयंत के प्रेम को भुला नहीं सकती । जयंत की बदहाली के कारण एक प्रकार का अपराध-बोध भी उसे पीड़ित करता है । वह पचहत्तर रुपये की सामान्य नौकरी करे यह भी अनिता को ठीक नहीं लगता । अनिता चाहती है कि जिस तरह उसने एक उच्च-कुलीन परिवार में विवाह कर लिया है , जयंत को भी किसी उच्च सम्मानित पद पर बैठकर अपने जीवन को कोई नया मोड़ देना चाहिए । इस दिशा में वह कुछ प्रयत्न भी करती है , परंतु जयंत हमेशा अपने मन की करता है । अनिता मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए , समय निकालकर जयंत से मिलती रहती है और उसे सलाह-मशविरा भी देती रहती है । किन्तु जयंत पर उसका कोई असर नहीं होता । अनिता का मि. पुरी से विवाह करने का उद्देश्य कथानक से स्पष्ट नहीं हो पाया है , किन्तु विवाह के बाद वह निरंतर इस कोशिश में लगी रहती है कि जयंत सुखी और साधन-

संपन्न जीवन व्यतीत करें । अनिता की पसंद की लड़की से शादी करे और अपनी पसंद के व्यवसाय को चुन ले । लेकिन जयंत को अपनी पसंद "अनिता" ही जब प्राप्त नहीं हो सकी , तो वह अब क्या करे और किसके लिए करे ? यह गांठ है कि खुलने का नाम नहीं लेती । अनिता चाहती है कि जयंत उसके स्तर तक उठे । इसके लिए वह कई बार जयंत से नाराज होकर कहती भी है —" मिसेज पुरी होकर मुझे अपनी हैसियत समझना चाहिए । मैं वह नहीं समझ पाती और तुम तक से मिलती हूं । मि. पुरी के लिए यह कितना कठिन होता होगा तुम्हीं स्वयं सोचो ।"[103]

अनिता से उत्पन्न निराशा के कारण जयंत पलायनवादी , कठोर एवं जटिल बन जाता है । यह निराशा उसके जीवन में इतनी गहरी धंस जाती है कि बाद में अपने पसंद की लड़की चन्द्री से विवाह कर लेने पर भी वह उसे पूर्णतया संतुष्टि नहीं दे पाता । अनिता जयंत की दुविधा को देखते हुए महसूस करती है कि जयंत उससे छूटकर अब किसीका नहीं हो सकता । वह जयंत से कहती है —" स्त्री देह को शास्त्र ने अशुचि कहा है । पाप की खान बताया है । तुम यही न मानते हो । जयंत ? ... हम सब क्या वैसी ही हैं । सब अशुचि हैं , अपावन हैं , नहीं तो तुम भागते क्यों हो , जयंत ? .... तुम बोलते क्यों नहीं ? जयंत , मैं पूछती हूं बताओ पाप क्या होता है ? क्या वह कुछ होता है ? ... बोलो , जयंत । बस आज का दिन है और वह खुद दे गए हैं , फिर मेरे पास कुछ नहीं बचेगा । मैं तुमसे पूछती हूं स्त्री डायन है ? खा जाएगी ? लूट लेगी ? भ्रष्ट कर डालेगी ? आज तुम उत्तर देने से जयंत बच नहीं सकोगे ? चन्द्री मुझे मिली थी । वह रोती थी ... मैं पूछती हूं तुम क्या चाहते हो ?[104] लेकिन जयंत की चाह जैसे मर चुकी है । अनिता की तीखी से तीखी प्रताड़ना सहकर और उसे थप्पड़ें मारकर भी वह अपने अंतःसंघर्ष को जीत नहीं पाता । अनिता जानती है कि यह वस्तुतः "अनिता" ही है , जो उसे

चैन नहीं लेने दे रही है। और अन्ततः जयंत की इस गाँठ को खोलने के लिए वह आत्म-समर्पण तक की स्थिति में आ जाती है। यहाँ पर "सुनीता" का स्मरण हो आना स्वाभाविक होगा। वह भी हरि-प्रसन्न के मन की गाँठ को खोलने के लिए उसके सामने निर्वस्त्र हो जाती है। सुनीता का पति और अनिता का पति भी एक जैसे लगते हैं। हरि और जयंत भी एक जैसे लगते हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में यह प्रायः देखा जाता है कि उसके प्रमुख नारी पात्र अपने सर्वस्व का समर्पण पति से इतर अपने प्रेमियों के सम्मुख कर देती हैं और उस समय प्रेमी फिर ठिठक जाते हैं। कामशास्त्र में जिसे [illegible] "टीमरिंग" कहते हैं उसकी प्रक्रिया समूचे उपन्यास में चलती रहती है। यहाँ हम देखते हैं कि अनिता के प्रेयसी रूप की जीत होती है। आरंभ से अंत तक अनिता का प्रेयसी रूप ही मुखर रहता है। अनिता अधिक संयत, समझदार एवं व्यवहारपटु है। वह पत्नीत्व, प्रेयसीत्व और सतीत्व सभी की रक्षा करती है। जैनेन्द्र के अन्य नारी-पात्रों की अपेक्षा अनिता में रहस्यमयता और अस्पष्टता कुछ कम मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। स्वयं लेखक अपने नारी-पात्रों के चरित्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं —" प्रेम प्रोटेस्ट के साथ है। समर्पण विरोध के साथ है। जयंत अपने संयम में दृढ़ रहता है। अनिता अनुभव करती है कि इसके पीछे अहंकार है, अभिमान है और वह अभिमान उसे सामान्य व्यक्ति के रूप में व्यवहार करने ही नहीं देता। पत्नी के प्रति पति होकर भी उसका यह ठण्डापन, यह अलगपन उसे असहनीय मालूम होता है। अपनी ओर से पहले उच्छृंखल आचरण करती है। नोचती-खसोटती है, अपशब्द कहती है। बाद में वही अपने को पूरी तरह, अपने पूरे अर्पण के लिए उद्यत होती है, ये सब आचरण किसी ओर से भी वासना-मूलक कहा जाए वह नहीं है। बल्कि दोनों के भीतर जो सहानुभूतिपरक द्वन्द्व चल रहा है, उसका अभिव्यंजन है।" 105

<u>चन्द्री :</u>

चन्द्री अर्थात् चन्द्रकला "व्यतीत" उपन्यास का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पात्र है । उपन्यास के नायक जयंत से उसकी शादी होती है, इस नाते हम उसे उपन्यास की दूसरी नायिका भी कह सकते हैं । वह एक धनी-मानी संपन्न व्यक्ति की पुत्री है । वह उदिता की कज़िन है और उदिता के पति कुमार के प्रति बेतहाशा आकर्षित है । उदिता और कुमार जब विलायत जाने का प्लान बनाते हैं तो चन्द्री भी उनके साथ तैयार हो जाती है । उदिता चन्द्री के चाल-चलन से प्रसन्न नहीं है, परन्तु खुलकर उसे कुछ कह भी नहीं सकती है । वह जयंत को कहती है —" जयंत तुम भाग्य से मिल गये हो । हमारा इतना काम कर दो । तुम इशारा करोगे, चन्द्र रुक जायेगी । कुमार पर तो नशा है, और वह सोचती नहीं कि एक घर बिगाड़ रही है । जयंत, नहीं जानती मैं क्या कर बैठूँगी । ऐसा ही है तो वे चले जाएँ, मैं रह जाऊँगी । लेकिन फिर —"[106] कुमार पहले तो चन्द्री को विलायत जाने के लिए बढ़ावा देते हैं, किन्तु बाद में उदिता के उग्र रूप को देखते हुए चन्द्री उन्हें "बला" लगने लगती है और जब वे देखते हैं कि चन्द्री जयंत के व्यक्तित्व से भी आकर्षित है, तब वह जयंत को समझाते हैं कि विवाह न सही, दो-चार दिनों के रोमांस के बहाने ही सही वह चन्द्री को विलायत जाने से रोक रखे । जयंत उसमें सफल भी हो जाता है । वह चन्द्री को समझाता है कि उसे उन लोगों के साथ विलायत नहीं जाना चाहिए । जयंत के समझाने पर चन्द्री मान तो जाती है, लेकिन जयंत से कहती है —" उसी {उदिता} के लिए सोचते हो । जरा मेरे लिए भी तो सोचो । क्यों हमारा क्या अपनी तरफ नहीं है, सब दूसरे के लिए है ।"[107] और जयंत और चन्द्री का विवाह हो जाता है । परंतु जयंत के मनो-मस्तिष्क में तो अनिता बैठी है । वह चन्द्री से ब्याह तो कर लेता है, परन्तु उसे पत्नी का प्रेम नहीं दे पाता है । चन्द्री सोचती है सब धीरे-धीरे ठीक

हो जायेगा । दम्पति हनीमून के लिए कश्मीर जाता है । कश्मीर का रमणीय वातावरण और चन्द्री जैसी अनिंद्य रूप सुन्दरी पत्नी को पाकर भी जयंत बर्फ की सिल बना हुआ है । तब चन्द्री आक्रोश में भरकर कहती है — " लो मेरे सोने पर xxxx आप कहीं जाते हैं । सवेरे हमारा डेरा उखड़ना है । और सवेरा अब क्या ... डेढ़ तो बजा होगा । लो कश्मीर हमारा बीत गया , क्यों जयंत ? बड़ी खुशी-खुशी बीता ! ... फिर ब्याह क्यों किया था तुमने इस धरती की चन्द्री से ?" 108 चन्द्री के सौन्दर्य को लूटने की अपेक्षा जयंत जब चाँदनी रात में घूमकर आता है तब चन्द्री उस पर यों फट पड़ती है । " दाँत किटकिटाकर झटके से तन के तनिक से अंतिम वस्त्र को उतार कर मेरे मुँह पर जोर से फेंकते हुए कहा — " लो अब तो नहीं लगेगी सर्दी ! ... वस्त्र को जल्दी से हाथों में रोका । अपने को संभालना मुश्किल हो गया । आगे बढ़कर चन्द्री को बाँहों में उठाया और झटाक् बिस्तर में दुबका दिया । लगा था , प्रतिरोध करेगी । प्रतिरोध उसने किया भी , किन्तु वैसे रहने को नहीं जितने को वह हुआ था । और देखा , बिस्तर में वह चुप शान्त हो गई है ।" 109 परन्तु जयंत कुछ नहीं कर पाता । इसका सांकेतिक वर्णन लेखक ने किया है — " वह रात चाँद के निकट ही बीतेगी , चन्द्री के तट पर पहुँचना नहीं हो सकेगा । क्यों न हो सकेगा ? क्यों वह न हो सका , यह आज भी नहीं जानता हूँ । कपड़े पहनते हुए बिस्तर में से आती सिसकी की आवाज सुन सका , फिर भी उन्हें पहनता ही गया । सिसकी जाने उसके अंतर के किन्हीं परतों को तोड़ कर आई होगी । लेकिन यही कहना होगा कि मैं भीतर बर्फ की सिल का आसन डाले कोई [illegible] बैठा था । आज जिंदगी के इस किनारे आकर कहता हूँ , अनासक्ति के सिवा कुछ न था ।" 110 वस्तुतः अनिता को लेकर उसके मन में जो ग्रन्थि बनी हुई है , वही यह कारण है । मानो प्रथम अनिता का बदला वह चन्द्री से ले रहा हो ।

आरंभ में चन्द्री को चंचल बताया है, किन्तु बाद में उसके चरित्र में गंभीरता और दृढ़ता के दर्शन होते हैं। जयंत के शीत व्यवहार के बावजूद वह शांत और संयत रहती है और अपने व्यवहार से कहीं यह प्रकट होने देती कि उनका दाम्पत्य-जीवन साधारण नहीं है। चन्द्री साथ ही साथ बहुत स्वाभिमानी भी है। जब उसे ज्ञात होता है कि अनिता ने जयंत पर काफी पैसे खर्च किए थे तो वह बड़ी विनम्रता के साथ चेक द्वारा उसके पैसे लौटा देती है। जयंत के ठण्डे व्यवहार के बावजूद जब वह घायल होकर सेना से लौटता है तो उसकी सेवा-शुश्रूषा में जुट जाती है। वह जयंत की असाधारणता [एबनोर्मेलिटी] को, प्यार में उसने खायी चोट को मिटा देने की भरपूर चेष्टा करती है, परन्तु वह असफल रहती है। इस तरह हम देख सकते हैं कि प्यार की भूखी इस अभिशप्त नारी को कहीं प्यार नहीं मिलता। पहले कुमार को चाहती थी, पर वह और किसीका था। जयंत को चाहने लगती है, तो जयंत अपनी वैयक्तिक ग्रंथियों के कारण उसके साथ सहज व्यवहार नहीं कर पाता। वह यहाँ भी छली जाती है। परंतु इसे चन्द्री के चरित्र की दृढ़ता ही कहना चाहिए कि विषम से विषम परिस्थितियों में वह टूटती नहीं है। वह बुद्धिशाली है, व्यवहारपटु है, प्रेममयी और ममतामयी है। अतः जब सारे प्रयत्न करके हार जाती है, तब वह जयंत के जीवन से भी स्वाभिमान के साथ निकल आती है और अपने मैके चली जाती है। जीवन को जीना उसने सीख लिया है। वह फिर जीवन से समझौता करती है और उदिता की मृत्यु के पश्चात् कुमार से विवाह कर लेती है। इस प्रकार उसके चरित्र में धैर्य, दृढ़ता, हर परिस्थिति से सामंजस्य करने की क्षमता आदि के दर्शन होते हैं। जीवन-विषयक उसका दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ है। जीवन के यथार्थ से वह जूझती है, टूटती नहीं है। श्री रघुनाथशरन झालानी चन्द्री के संदर्भ में लिखते हैं — "चन्द्री के व्यक्तित्व-अंकन में अनेक मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएं हैं। उसमें चुनौती देने का सामर्थ्य है, अपमानित होने पर फुत्कार करने की शक्ति है। उसमें दर्प और अहंकार है लेकिन साथ ही अपेक्षित भाव से

सेवा करते रहना भी उसका स्वभाव है । एक बार जयंत के मन की अंधकारमयी गुहाओं को जानकर वह उस पर अधिकार की चेष्टा नहीं करती है । जयंत की अवहेलना और भर्त्सना पाकर भी उसकी प्रसन्नता और प्रभुता में अंतर नहीं आता है ।" ।।1

अनिता के प्रति जयंत की रुग्ण आसक्ति [ मोरबिड फिक्सेशन ] के कारण ही उसकी हीनता-ग्रंथि शनैः शनैः अभिमान में परिवर्तित होती है और उसके कारण ही उसकी उग्रता बढ़ती जाती है । एक स्थान पर वह कहता है —" चन्द्री अतिशय रमणीया थी इससे मेरे लिए वह तिरस्कारणीया बन उठी , माननीया थी इससे अपमाननीया हो गई । धनशालिनी थी इससे दण्डनीया बन गई ।" ।।2 परंतु जयंत की इस ग्रंथि के कारण प्रवंचना का शिकार तो चन्द्री को ही होना पड़ता है । यह अलग बात है कि उसके स्वभाव की दृढ़ता उसे एक दूसरी दिशा में मोड़ देती है , अन्यथा कुमार और जयंत ने तो इसे मिटाने में कोई कोर-कसर नहीं बरती थी । जैनेन्द्र के नारी-पात्रों में चन्द्री हमेशा याद रहेगी ।

<u>उदिता :</u>

"व्यतीत" उपन्यास का यह एक गौण नारी पात्र है । पति कुमार सुशिक्षित और ऊँचे परिवार से हैं । इनके एक पुत्र है । पुत्र को दादा-दादी के पास छोड़कर ये लोग विलायत जाने की तैयारी कर रहे हैं । ये लोग ऐसा भी सोचते हैं कि वहाँ जाकर ये दोनों नौकरी करेंगे । वहाँ उनको कोई देखने वाला न होगा , अतः स्वतंत्र और उन्मुक्त प्रकार का जीवन जी सकेंगे । लेकिन उदिता की कज़िन चन्द्री इनके साथ जाने के लिए तैयार हो जाती है । किन्तु चन्द्री के व्यवहार से उदिता प्रसन्न नहीं है । कुमार के साथ उसका बढ़ता हुआ नैकट्य उसे चिंतित करता है । वह नहीं चाहती कि चन्द्री उनके साथ चलें । किन्तु अपने संकोची स्वभाव के कारण वह चन्द्री को खुलकर मना भी नहीं कर सकती । अतः उदिता जयंत

को समझाती है कि वह चन्दा को इस बारे में कुछ समझायें । उन दिनों चन्दा जयंत को भी चाहने लगी थी, अतः वह जयंत की बात को मान लेती है और उदिता और कुमार के साथ विलायत नहीं जाती है । कुमार और उदिता विलायत जाते हैं, पर उपन्यास के अंत में पता चलता है कि उदिता की वहाँ मृत्यु हो गई है । यह मृत्यु कैसे हुई है उसका कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उदिता एक साधारण घरेलू किस्म की महिला है । अपने पति और घर को चाहती है । उसकी सारी चिन्तायें इन दो को लेकर हैं । अतः चन्दा को लेकर जब उसे लगता है कि उसका घर टूट रहा है, तो समय रहते वह उसे दूर कर देती है । इस प्रकार वह समझदार, बुद्धिमान और व्यवहारकुशल भी है । चन्दा से वह खुलकर बात नहीं कर पाती है, उससे उसके भावुक और संवेदनशील स्वभाव का भी पता चलता है ।

नीला :

नीला भी "व्यतीत" उपन्यास का एक गौण नारी पात्र है । उसके पति बाकायदा डाक्टर हैं और उनका अपना एक नर्सिंग होम है । पैसे-टके से संपन्न और सुखी है । नीला देखने में सुंदर और कम उम्र की लगती है । वह हमेशा प्रफुल्लित रहती है और नर्सिंग होम के काम में पति का हाथ बंटाती है । जयंत जब युद्ध में घायल होकर लौटता है, तो उसे इनके ही नर्सिंग होम में रखा जाता है । जब नीला को पता चलता है कि जयंत चन्दा का पति है तो वह उसका विशेष ध्यान रखती है, क्योंकि चन्दा उसकी फ्रेंड है । नीला जयंत-चन्दा को मिलाने के भी बहुतेरे प्रयत्न करती है । यहाँ तक कि फूल का गुलदस्ता चन्दा के हाथों में देकर वह उसे जयंत के पास भेजती है । किन्तु जयंत उसे स्वीकार करने के बदले तहस-नहस कर डालता है । इस प्रकार नीला एक सुंदर, सुशील, प्रसन्नचित्त और ममतामयी महिला है ।

**कपिला :**

"व्यतीत" उपन्यास का यह एक गौण नारी पात्र है । उसके पति मि. कपिल होमियोपैथी के डाक्टर हैं । स्वभाव के आनंदी और लोकप्रिय हैं । अतः स्थानीय लोगों में उनका बहुत मान है । सबसे उनकी आत्मीयता है और लोगों को उनका घर अपने घर जैसा लगता है । इसका श्रेय मिसेज कपिला को जाता है । वह जन्मजात एक सेवाभावी औरत है । हमेशा लोगों की सेवा में जुटी रहती है । जैनेन्द्रजी के उपन्यासों में भगिनी के रूप में केवल दो नारी पात्र दिखाई पड़ते हैं — "सुनीता" उपन्यास में सुनीता की बहन सत्या और प्रस्तुत उपन्यास की कपिला । वस्तुतः कपिला उसका नाम नहीं है, पर लोग मिसेज कपिल के नाम से उसे जानते हैं इसलिए जयंत उसे कपिला कहता है । वह जयंत की मुँहबोली बहन है । मिसेज कपिल प्रौढ़, अनुभवी और स्नेहशीला नारी हैं । जयंत जब युद्ध में घायल होकर अस्पताल में दाखिल होता है, तब वह कपिला से परिचित होता है । जयंत को उससे भगिनी का प्रेम मिलता है । इस भगिनी-स्नेह पर गर्व करते हुए जयंत उसके बारे में कहता है — "कपिला जैसी नारियां इस जगत में होती हैं, जो मानो आदि दिन से भगिनी हैं, जिनमें मान है नहीं और मान जो माँगती नहीं हैं । कपिला को देखकर मालूम होता है कि स्त्री का नाम जिस कारण से माननीय हो उठा है उतना ही कारण है कि वह केवल भगिनी हो, भगिनी मानो उसका सामाजिक रूप नहीं, उसका प्रकृत रूप ही है ।"[113]
श्रीमती कपिल सिर से पैर तक सेवा की मूर्ति है । वह स्नेहमयी और सेवामयी है । पति होमियोपैथी के डाक्टर हैं, पर पति की मीठी गोलियों के साथ कपिला का स्नेह, सेवा तथा अनुग्रह भी रोगियों को रोगमुक्त करने में सहायक होता है । यथा — "कपिला की आँखों में अनुग्रह है । कितने रोगियों को यह वस्तु यहाँ से मिलती है, जानता हूँ उनकी गिनती नहीं है । होम्यो-

पेथी की गोली कुछ भी करे, लेकिन इस कपिला नारी की आँखों की सतत कुछ प्रवहमान यह वस्तु रोगी को सहसा किसी दूसरे लोक में जाने नहीं दे सकती।"[6] कपिला वाचाल नहीं है। उसकी मौन अम्लान मुस्कान मानो संजीवनी का काम करती है। सेवा के साथ कपिला का एक दूसरा गुण यह है कि कोई भी नयी चीज सीखने का उसमें भरपूर उत्साह है। वह जयंत से हिन्दी सीखने लगी है, चित्रकारी सीखने लगी है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कपिला एक ऐसा नारी पात्र है जिसमें जीवन के प्रति अदम्य उत्साह है।

<u>बुधिया :</u>

"विवर्त" उपन्यास की भिन्नी की भाँति बुधिया भी जैनेन्द्र के अमर नारी पात्रों में आती है। उपन्यास में उसकी चर्चा बहुत कम हुई है, पर जितनी भी हुई है, पाठक पर एक अमिट छाप छोड़ जाती है। बुधिया को देखकर "त्यागपत्र" की मृणाल की याद है। शैलेश मटियानी के बहुत-से नारी पात्र स्मृति में कौंधने लगते हैं। वह सुंदर है, युवती है। उसकी माँ बचपन में ही मर चुकी है। बाप मजदूर है, पर शराब-ताड़ी में सबकुछ फूंक देता है। पैसों के लिए वह अपनी बेटी के तन का सौदा भी करता है। बुधिया बहुत ही सहनशील है। पिता की मार भी खाती है और उसकी जरूरतों को भी पूरा करती है। जयंत को बुधिया से सहानुभूति है। एक दिन वह देखता है कि गली में हंगामा मचा हुआ है। बुधिया के बाप ने दो आदमियों से पैसा लिया था और अब वे उसे ढूंढ रहे थे। जयंत उन लोगों के पैसे लौटा देता है। जयंत जब बुधिया को बुलाकर इस संबंध में पूछता है तो वह स्पष्ट भाव से कहती है — "दादा हर किसी से पैसा ले लेते हैं और जाके ताड़ी में फूंक देते हैं। माँ गई तब से यही हाल है। मैं अपने बस किसीको नहीं लौटालती। लेकिन दादा शक्ल देखते ही मुझे मारने लग जाते हैं। ठीक है, मुझे ही न मारें तो जायें कहाँ। दुनिया जो उन्हें मारती है। मैं शिकायत नहीं करती, लेकिन तन कभी बहुत पीर

दे आता है । ... ऐसा होता है, तन नहीं देता काम, तभी लौटालती हूं । नहीं तो बेईमान लो ग हम नहीं है ।"[115]

जयंत का माथा इस नारी की महानता के आगे झुक जाता है । हमारे शास्त्र शरीर को मिट्टी कहते हैं । अठारह साल की उम्र में बुधिया ने इस सत्य को अवगत कर लिया है । मन उसका है, पर "उसका तन उसका नहीं है, जैसे उसका छोड़ सबका हो ।"[116]

डा॰ बिजलीप्रभा प्रकाश के मतानुसार मृणाल और बुधिया में साम्य है । यथा — " तन की असारता का जीवन-दर्शन लेकर बुधिया हमारे सामने आती है । "त्यागपत्र" में मृणाल भी यही दर्शन हमारे सामने रखती है । मृणाल ने भी मन न देकर तन दिया है । बुधिया भी अपने पिता के पैसों का ऋण चुकाने के लिए बिना मन दिए तन देती है ।"[117] जिस प्रकार मृणाल में कोई विरोध नहीं मिलता, अपना शोषण करने वालों के प्रति भी, बुधिया में भी कोई विरोध नहीं मिलता । उसका बाप उसके शरीर का सौदा करता है, पर उसके लिए भी उसके मन में वितृष्णा का भाव नहीं है । वह सोचती है कि उसका बाप दुनियावालों का मारा हुआ है, अतः वह उसे मारता है तो अपनी भड़ास ही निकालता है । वह अपनी भड़ास किस पर निकाले । इस प्रकार बुधिया मृणाल का ही प्रतिरूप लगती है, जिसमें इस मानवता के लिए करुणा और सिर्फ करुणा है । उपन्यास में कुछ संकेत मिलते हैं कि जयंत के समझाने पर बुधिया का बाप सुधर जाता है । यथा — " बचाकर कुछ पैसा उसने [बुधिया के बाप ने] जोड़ लिया है । बुधिया की माँ की और उसकी बेटी के ब्याह की बात उसे लग गई है । पर उधार से अपनी इकलौती बेटी का ब्याह करेगा ? नहीं, कभी नहीं । ... बुधिया तो मेरे पैरों पड़ गई । समझती है कि उसके दादा जो बदल गये हैं, सो जादू मेरा है । नहीं तो ताड़ी में ही जान खोते । .... बुधिया को देखा, बदन वही है, लेकिन आँखों में चिन्ता की जगह चितवन है ।"[118]

**सुमिता :**

अनिता और चन्द्री की भाँति सुमिता भी जयंत को चाहती है । जयंत जिस पत्र में पचहत्तर रुपये की नौकरी करता है, सुमिता उस पत्र के मालिक की बेटी है । वह मेडिकल की छात्रा है और कविता करने का शौक भी उसे है । उसका आचरण कुछ स्वच्छंद है । उसे अपनी आर्थिक संपन्नता का भी अभिमान है । वह विलास-वासना प्रिय नारी है । स्वयं सुमिता के पिता को जब मालूम होता है कि जयंत एक मेधावी और उच्चकुलीन तथा उनकी जाति का युवक है तो वे चाहने लगते हैं कि सुमिता से उसका नैकट्य बढ़े । इसलिए वे जयंत को कहते हैं कि वह सुमिता को हिन्दी पढ़ाया करे । जयंत मना नहीं कर सकता और सुमिता को पढ़ाता है । सुमिता भी जयंत की ओर आकृष्ट होती है । परंतु जयंत के मन में तो अनिता बैठी हुई है । अतः जयंत सुमिता को स्वीकार नहीं कर पाता । सुमिता का व्यवहार घर में तो शालीन रहता है, परंतु मोटर के एकान्त में वह प्रगल्भ और धृष्ट हो उठती है । वह पुस्तक में कामुक तस्वीरें रखकर अपनी वासना का इजहार करती है । पुस्तक में ऐसी तस्वीरों को देखकर जयंत को आश्चर्य होता है कि शिक्षित, सभ्य और कुलीन सुमिता ऐसा व्यवहार कैसे कर सकती है । परंतु मनोवैज्ञानिक दृष्टया देखा जाए तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है । वह ऊँची सामाजिक प्रतिष्ठा और घर की मर्यादाओं से घिरी हुई है । उसके पास पैसा है, समय है, कोई विशेष उत्तरदायित्व नहीं है, कोई समस्या नहीं है, कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं है । ऐसी स्थिति में काम-वासना की ओर उसका मन उन्मत्त रहता है तो यह उसकी उठती हुई उम्र और जवानी का तकाजा है । मोटर के एकान्त में जब सुमिता जयंत को छूने की चेष्टा करती है तब जयंत उसके हाथ को अलग हटा देता है । सुमिता अपमान में सिसकते हुए कहती है — "यु सिस्सी, यु डेयर ।"[119] परंतु जयंत जब विनम्रता के साथ कहता है कि वह अपात्र है । तब उसकी आँखों का विष दूर हो जाता है । उसका सांकेतिक वर्णन लेखक ने जयंत के शब्दों में करवाया है । यथा—

" यह व्यापार चलती कार में कुछ ही क्षण में हो गया । मैं सुमिता का आभारी हूं । क्योंकि उसे खोकर सदा के लिए मैंने उसे पा लिया । अब उसका भरा-पूरा परिवार है । वह आदर्श गृहिणी है ।"[120] डा. रामरतन भटनागर सुमिता के चरित्र में उच्चवर्गीय नारी के पतन का चरम बिन्दु पाते हैं, परंतु ऐसा कुछ भी नहीं है । वासना के ज्वार को सही दिशा मिलते ही वह उच्छृंखलता समाप्त हो जाती है । सुमिता के साथ ब्याह न करके जयंत ने ठीक ही किया, अन्यथा उसकी हालत वही होती जो चन्द्री की हुई । और सुमिता शायद संभाल न पाती स्वयं को । सुमिता के चरित्र से यही ज्ञात होता है कि जिन नारियों में कामावेग प्रबल होता है उनको यदि समय रहते सही दिशा में मोड़ दिया जाय तो वे सफल गृहिणियाँ हो सकती हैं ।

<u>जयवर्द्धन उपन्यास में निरूपित नारी पात्र :</u>

"जयवर्द्धन" जैनेन्द्रजी का एक प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । यह उपन्यास डायरी शैली में लिखा गया है । एक विदेशी दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ मि. हूस्टन की डायरी के रूप में इसे प्रस्तुत किया गया है । परंतु जिस प्रकार "त्यागपत्र" उपन्यास में कथा प्रमोद की अधिक न होकर मृणाल की है, इस प्रकार यहां भी बात मि. हूस्टन की अपनी न होकर जयवर्द्धन और इला की है । उपन्यास में निरूपित समय भी भविष्य का है । उपन्यास की पृ.सं. 42 पर कहा गया है कि गांधी को गए लगभग पौन सदी हो गई है । इसमें निरूपित जयवर्द्धन का चरित्र पं. जवाहरलाल नेहरू से प्रभावित लगता है । उपन्यास में अनेक राजनीतिक हलचलों तथा राजनीतिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का सुदीर्घ विवेचन मिलता है । और यह दार्शनिक विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत हुआ है कि उपन्यास "अनामस्वामी" की भांति ही अपठनीय-सा हो गया है । जहां तक उपन्यास के नारी पात्रों का सवाल है, इसमें इला और लिजा (एलिजाबेथ) ये दो नारी पात्र मिलते हैं ।

इला :

इला "जयवर्द्धन" उपन्यास की नायिका है । प्रारंभ से ही उसे धीर-गंभीर और कर्तव्यपरायण बताया है । उपन्यास में वह जयवर्द्धन की प्रेयसी के रूप में आती है । प्रणय परिणय में परिणत होगा ऐसा उसे विश्वास है । इस दृष्टि से वह संतुष्ट है । "अ व्यतीत" की भूमिका का विलोम इला में मिलता है । प्रेयसी के रूप में इला को सफल कहा जा सकता है, क्योंकि उसके प्रेम की अंतिम परिणति परिणय में होती है और वह जय को पति रूप में प्राप्त करती है । अतः जैनेन्द्रजी की औपन्यासिक नारी-सृष्टि में इला की गणना सफल प्रेमिकाओं की कोटि में हो सकती है । इला का व्यक्तित्व "मुक्तिबोध" की नीलिमा की भाँति अत्यन्त आकर्षक है । इसे हम चुम्बकीय व्यक्तित्व कह सकते हैं । उसमें दृढ़ता, साहस एवं धैर्य भरपूर मात्रा में है । इन कारणों से ही वह जयवर्द्धन की प्रेमिका की भूमिका को बखूबी निभा पाती है । अन्यथा जयवर्द्धन जयवर्द्धन की जो राजनीतिक भूमिका है, उसमें उसका साथ निभाना बामुश्किल काम हो सकता है । जय को राजनीतिक अपवादों का शिकार होना पड़ता है । उसके विपक्षी नेताओं और मठाधीशों की आलोचना, भर्त्सना और निंदा को झेलना पड़ता है । ऐसी स्थिति में अपनी चारित्रिक दृढ़ता के कारण ही वह जय का साथ निभा पाती है । जय के प्रति उसकी जो निष्ठा है, उसे श्लाघनीय कहा जा सकता है । उसमें भरपूर आत्मबल है ; परंतु कहीं-कहीं नारी-सुलभ ईर्ष्या भी दृष्टिगोचर होती है । लिजा के प्रसंग में उसे देखा जा सकता है । प्रारंभ में वह चिदानंद के आश्रम में रहती है, परन्तु स्वामी चिदानंद को वह पसंद नहीं करती । चिदानंद की प्रवृत्तियों के प्रति वह सशंक है । उसकी निष्ठा केवल जय के साथ है । इस प्रेम और निष्ठा के कारण ही लोकोपवाद का सामना करके भी वह जय के साथ बिना विवाह के रह रही है । जय के शुभ-मंगल के लिए वह निरंतर अपने "स्व" का विसर्जन करती रही है । परंतु इला एक प्रेयसी के रूप में

जितनी सफल है, उतनी पत्नी के रूप में नहीं, क्योंकि विवाह के उपरांत जय उसे छोड़कर कहीं चला जाता है। अतः इला के चरित्र को एक सफल प्रेयसी और असफल पत्नी की कोटि में रखा जा सकता है।

इला अपने हृदय की गहराइयों से जय को चाहती है, किन्तु अपनी अंतर्मुखी प्रकृति और संकोचशीलता के कारण अत्यन्त एकान्त और निःसंकोच स्थिति में भी जय का शारीरिक सुख पा नहीं सकती है। उसका उसे खेद भी है। यथा — "मैं तरस रही हूँ, तड़प रही हूँ, लेकिन मुझे लिया नहीं गया।"[121] इन क्षणों का सजीव स्पन्दन के साथ इन शब्दों में उभरती है — "बहुत दिनों की बात है, बीस, शायद बाईस बरस पहले की। सागर का तट था। संध्या डूब चली थी। तट सूना था। लहरों पर लहरें लेकर सागर आता और पछाड़ खाकर पीछे लौट जाता। मैं बराबर में साथ ... न थी, दो डग पीछे खड़ी जय को देख रही थी। वह पास थे और पूरे दीख नहीं सकते थे। आँख से जैसे परस ही पा रही थी ... दो से ऊपर मिनट हो गए थे और वह स्तब्ध खड़े थे। आज उनका मन उन्मन था। चुप थे। जैसे कहीं खुला ... बात न कर पाते थे, बस सागर की ओर मुँह किए खड़े थे — स्तब्ध और अचल। जैसे युग बीत गए। सामने अपारता थी और आँखें उनकी वहाँ थिर हो गई थीं। मुझे लगा, यह व्यक्ति उस पार ही है, इधर इस ओर नहीं है जहाँ मैं हूँ। उस क्षण मुझ में ऐसा गहरा मोह हो आया, जी जैसे उमड़ा आता हो। उस सामने खड़े व्यक्ति को अंक में लेकर जैसे समूचा भीतर दुबका लूँ, ऐसा जी चाहा। पर मन से जितना भी चाहा, मैं अलग खोयी-सी उन्हें देखती ही रही ... न हिलन, न चलन, न कहीं एक बोल। जैसे एक स्पंदन मूर्छित हो सोया हो, समय की अविरता मुझ पर से बीता नहीं।"[122] जय "इला" कहते हुए कुछ आगे भी बढ़ता है। इला अपने संस्मरण में मानो बोलती है — लो, लो, लो, मुझे लो ... तभी एक हलका-सा परस मेरी

उँगलियों को छू गया । सारे गात में एक साथ बिजली दौड़ गई और मैं वर्जन करती चिल्लाई : नहीं , नहीं , नहीं नहीं — वर्जन करती ही मैं अपेक्षा में रही कि कोई होगा जो मेरी "नहीं" नहीं सुनेगा और मुझे ले ही लेगा । इस अपेक्षा से ही "नहीं" मैं दोहराती चली गई , हाथों के वर्जन से लेनेवाले को हटाती और बुलाती चली गई ।"[123] और जय इस "नहीं" को सचमुच का "नहीं" समझकर कंधे पर हाथ रखते हुए कहते हैं — " आओ चलो । " परंतु इला को यह अच्छा नहीं लगता है । यथा —" मुझे यह बेहद भारी हो रहा था । तब एक साथ मैं गिर जाती , मर जाती , मार दी जाती , तो कृपा होती ।"[124] और इला समूचे उपन्यास में अंत तक अकुंठित ही रहती है । जैनेन्द्र के ऐसे नायक और नायिकाएँ सामान्य बुद्धि से कुछ परे ही दिखते हैं ।

इस प्रकार "जयवर्द्धन" उपन्यास की इला एक विशिष्ट नारी-पात्र है । प्रौढ़ावस्था तक अविवाहित रहकर , शारीरिक संबंधों से परे रहकर , जय के साथ रहते हुए वह उसका साथ निभाती है । स्त्री-पुरुष मैत्री का यह एक अद्भुत उदाहरण है । निश्चयतः यह साहस और गरिमा का काम है । अतः कह सकते हैं कि इला का प्रेम सात्विक प्रेम है । यह प्रेम उसके चरित्र को गौरवान्वित करता है । इला के चरित्र की यह एक विशेषता है कि वह अन्य उपन्यासों के नारी पात्रों की भाँति प्रेमी या पति के द्वन्द्व में फंसी नहीं है । अपने प्रथम उपन्यास में कट्टो और बिहारी को लेकर जो आदर्श उन्होंने रखा था , उसीका एक दूसरा रूप हमें जय और इला के रूप में मिलता है ।

इला के पिता आचार्य इला को विवाह की अनुमति नहीं देते । फलतः जय और इला अविवाहित रहते हैं और अनेक सामाजिक-मानसिक यंत्रणाओं और लांछनाओं को झेलते हैं । किन्तु फिर भी इला पिता की इस कठोरता को सहजता से लेती है । उसके कारण उसके मन में कोई कटुता पैदा नहीं होती । पिता

की ओर से स्वीकृति न मिलने पर अविवाहित रहकर भी वह जय के साथ रह रही है। ऐसे रहना कोई मुश्किल काम नहीं। पर मुश्किल इसलिए है कि उनमें किसी प्रकार का कोई शारीरिक संबंध नहीं है। और ऐसा कुछ दिन, कुछ रात, कुछ महीने नहीं, बल्कि सालोंसाल चलता है। यह मुश्किल है या तैमिसाम है।

प्रस्तुत उपन्यास में इला के चरित्र पर मि. हुस्टन के कथनों द्वारा कई स्थानों पर प्रकाश पड़ा है। इला जय के साथ उसकी प्रेयसी के रूप में रह रही है। एक तरह से कहा जाये तो वह साम्राज्ञी-पद को सुशोभित कर रही है। अपार वैभव के बीच भी वह अत्यन्त सादगी से रहती है। महलों में रहते हुए भी वह सदा अनलंकृत रहती है तथा खादी का परिधान धारण करती है। उसके समग्र व्यक्तित्व से नारीत्व झलकता है। लिजा के साथ तुलना करते हुए मि. हुस्टन इला के संदर्भ में कहते हैं — "मैंने इला को देखा। अपनी कैसी घनिष्ठ कथाएं मुझे सुनाने तक वह नारी आ गई है। पर यह सब होने के बाद भी कहीं असमंजस नहीं है, प्रभावशालिता और शालीनता में कहीं त्रुटि नहीं। देखकर तत्काल उसी समय की रूस की एलिजाबेथ का ध्यान आया। बहुत ही विलक्षण प्रतीत हुआ। निश्चय ही सामने बैठी नारी में नारीत्व किसी और से कम न था, पर वह तनिक भी मुझ पुरुष में उद्वेग का कारण न बना। कुछ प्रत्युत एक समाहित शुचिता और संतोष का अनुभव हुआ। व्यक्तित्व के चारों ओर एक सौन्दर्य का परिमंडल था, पर उससे भाव की भव्यता ही मिली। मन में चंचलता नहीं पैदा हुई।" [125]

इला के चेहरे पर हमेशा आंतरिक तेज झलकता है। वह मोम नहीं है, उसमें धार भी है। अपने अधिकारों के प्रति वह सजग है। मि. हुस्टन जब अपनी सीमा लांघ कर इलाको जय से अलग रहने की परामर्श देते हैं और उससे सवाल पर सवाल करते जाते हैं, उस समय का इला का रूप देखते ही बनता है। यथा — "सहसा ही स्वर

शांत और संयत हो आया, जैसे साम्राज्ञी हो — " मि. हुल्टन, क्या मैं अब आपको जाने के लिए कह सकती हूं ? "[126] तात्त्विकता तथा ब्रह्मचर्य की प्रखरता से इला का व्यक्तित्व बड़ा समाहित हो गया है। एक स्थान पर मि. हुल्टन इला के संदर्भ में कहते हैं — " रूप गौरा, केश खुले, सर्वथा अनलंकृत, व्यक्तित्व सम्पूर्ण समाहित। चित्त को आह्लाद हुआ, भारत में देखा है, लोग पांव छूते हैं। वह तो न हुआ, लेकिन उसकी आवश्यकता समझ सका। समय होता है जब झुके बिना तृप्ति नहीं मिलती। चरण-स्पर्श की प्रथा की गंभीर सार्थकता मुझे अनुभव हो आई। "[127] अभिप्राय यह कि इला का व्यक्तित्व महामाननीय है। ऐसा कि किसी दूसरे व्यक्ति को चरण-स्पर्श का मन हो जाए।

इला के चरित्र का एक अनोखा आयाम है उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व। इला का चरित्र जो इतना गरिमामय बन पड़ा है, उसके मूल में उसका यह स्वतंत्र व्यक्तित्व ही कारणभूत है। जय की अनुमति के बिना भी कई-कई मामलों में वह स्वयं निर्णय लेती है। कुछ महत्वपूर्ण काम की बातें ही जय तक पहुंचायी जाती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जय जो स्थिर रह पाता है, इसका कारण इला है। इला का उन्हें बहुत सहारा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जैनेन्द्रजी की दार्शनिक चिंतनशीलता ने इला के रूप में एक आदर्श भारतीय नारी की सृष्टि की है। ऐसा प्रतीत होता है कि इला के चरित्र-निर्माण में लेखक ने अपनी कला को चरम सीमा तक पहुंचा दिया है। इसमें उनकी कल्पना सचमुच निखर उठी है। जय और इला के रूप में, विशेषतः इला में, लेखक अपनी समूची आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, आदर्शवादिता तथा भावुकता को मूर्तिमंत बनाने में सफल हुए हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि इला जैनेन्द्रजी का एक विरल नारी पात्र है।

**एलिजाबेथ :**

एलिजाबेथ उर्फ लिजा "जयवर्द्धन " उपन्यास का दूसरा नारी पात्र है । लिजा एक हंगेरियन युवती है । एक भारतीय युवक मि. नाथ के साथ उसने विवाह किया है । मि. नाथ की भारतीय राजनीति में गहरी दिलचस्पी है ।और उसमें उन्होंने अपना स्थान भी बना लिया है । लिजा का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है । सुनहले बाल तथा नीली आँखों वाली यह युवती हमेशा हँसती हुई दिखती है । लिजा को भारतीय नागरिकता भी प्राप्त है ।

मि. नाथ भारतीय राजनीति में उग्रपंथी दल का मु नेतृत्व कर रहे हैं । दल में मि. नाथ के महत्व का कारण लिजा का चुंबकीय व्यक्तित्व है । लिजा इस प्रकार पुरुषों को आकर्षित करती है कि इला तो उसे जादूगरनी ही समझने लगती है । लिजा महत्वाकांक्षी और चंचल प्रकृति की नारी है । अपनी महत्वाकांक्षा को राह देने के लिए ही वह मि. नाथ के साथ पार्टी में काम करती है । शुरू-शुरू में लगता है कि उन दोनों पति-पत्नी में गहरा प्रेम है , परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है । अपनी चंचल प्रकृति के कारण वह जय की ओर आकृष्ट होती है । उसकी महत्वाकांक्षा राजरानी बनने की है । जय उसको यूरोप जाने वाले शिष्ट-मंडल में विशेष प्रतिनिधि के रूप में भेजते हैं । लिजा को बाहर भेजने में ही जय अपनी कुशल मानते हैं । इस संदर्भ में मि. हुस्टन से जय कहते हैं -" काफी दिनों से मैं देख रहा हूं कि उसमें शक्ति है , वेग है ... भारतीय जीवन से कुछ अनभिज्ञ है , इससे यहां उसकी उपस्थिति और प्रस्तुत स्थिति में चंचलता लाती है , कुछ क्षोभ भी जगाती है ... यूरोप में रहे तो वही क्षोभ क्या कुछ नहीं बन सकता है ? ... विरोध रोष में से उपजता है । यह है उसे अवकाश और उपयोग मिले तो वही भ्रम न रहे बल हो जाए ... फिर इला उसे दूर चाहती है । मुझे भी यह उचित लगता है ।" [128]

उपन्यास में प्रथमतः नाथ-दंपति जय से समझौता करने के उद्देश्य से आया था। किन्तु प्रथम मिलन के बाद ही लिजा नाथ की अपेक्षा जय से अधिक घनिष्ठ हो जाती है। इसका एक कारण यह है कि सत्ता (पावर) के प्रति उसके मन में उत्कट लोभ का भाव है। मि. नाथ पर सत्ता स्थापित करके वह उसके दल पर अपना वर्चस्व स्थापित करती है। नाथ के द्वारा वह जय तक पहुँचती है। जय के प्रति उसका जो आकर्षण है वह व्यक्ति जय के कारण नहीं, अपितु राष्ट्राधिप जय के प्रति है। जय लिजा को आत्म-केन्द्रित - केन्द्रित (सेल्फ-सेन्टर्ड) व्यक्तित्व मानता है, दूसरी ओर हूस्टन का मत है कि यह महिला खतरनाक हो सकती है। सत्तालोलुप लिजा प्रेम द्वारा जय पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहती है। परंतु जय के हृदय-सिंहासन पर तो पहले से ही इला बैठी हुई है। जय लिजा से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार रखते हुए भी अपने कुछ निर्णयों में चट्टान की मानिंद अडिग है। पाश्चिमी वातावरण में पली-बढ़ी लिजा यद्यपि स्पष्ट और खुले हृदय की नारी है, तथापि उसमें दृढ़ता और निष्ठा का सर्वथा अभाव है। न विचारधारा के प्रति न अपने प्रेम के प्रति, उसमें किसी प्रकार की निष्ठा दिखाई पड़ती है। अतः चंचलता ही उसके व्यक्तित्व का एक प्रमुख आयाम है ऐसा हम कह सकते हैं। उसके इस रीढ़हीन व्यक्तित्व के कारण हम उसे "मिज-मिजी लिजा" कह सकते हैं। इस संदर्भ में डा. विजलीप्रभा प्रकाश के निम्नलिखित विचार उल्लेखनीय रहेंगे —" समस्त उपन्यास में देखा जाय तो इला और लिजा का चरित्र एक-दूसरे की पार्श्वभूमि का काम करता है। परस्पर विरुद्ध व्यक्तित्व का नारी-चित्रण जैनेन्द्रजी ने एक साथ बड़ी कुशलता से किया है। इला का प्रेम पवित्र अलौकिक वस्तु है तो लिजा चंचल, वासनात्मक आकर्षण लिए हुए है। इला त्याग, सेवा, बलिदान की भावना से ओत-प्रोत है तो लिजा भोग, लोलुप, सत्ताकांक्षी है। इला का चरित्र लिजा की पृष्ठभूमि में बहुत ही प्रखर रूप से प्रकाशित हुआ है। लिजा का व्यक्तित्व अपनी भूमिका पर उपयुक्त हुआ है। उपन्यास

MEHTA LIBRARY

में उपनायिका की दृष्टि से लिजा का भी अपना महत्व है । वह अपनी भूमिका में विशिष्ट है ।"[129] इस प्रकार विसदृशता (कोन्ट्रास्ट) के आधार पर जैनेन्द्रजी ने इला और लिजा के चरित्रों को स्पष्ट और पारदर्शक बनाया है ।

## अनंतर उपन्यास में निरूपित नारी-पात्र :

"अनंतर" भी जैनेन्द्रजी का एक चिंतन-बोझिल उपन्यास है । उसका प्रकाशन सन् 1968 में हुआ था । इसमें भी लेखक ने पारिवारिक समस्या को उठाया है । वस्तुतः जैनेन्द्र के उपन्यासों में कई बार जगबीती आपबीती बन जाती है और आपबीती जगबीती । प्रस्तुत उपन्यास में भी ऐसा हुआ है । इसमें जामाता आदित्य और पुत्री चारु का दाम्पत्य जीवन , पुत्र प्रकाश , लेखन एवं प्रकाशन संबंधी गुत्थियाँ , शांति-धाम की योजना , गुरु आनंद माधव और उनसे जुड़ा हुआ वृत्तान्त , वन्या और अपरा से जुड़े हुए वृत्तान्त आदि से कथापट को बुना गया है । इसके प्रमुख नारी पात्रों में अपरा और वन्या है । रामेश्वरी और चारु के रूप में औसत भारतीय माँ-बेटी और उनकी चिन्ताओं को रेखांकित किया गया है ।

## अपरा (अपराजिता) :

"अनंतर" उपन्यास की सारी कथा अपरा उर्फ अपराजिता के व्यक्तित्व के आसपास घूमती है । वह विलायत से भोग-विलासपूर्ण जीवन जीकर भारत में आत्मिक शांति के लिए आती है । जहाँ वन्या या वनानी के रूप में लेखक ने एक आदर्शवादी नारी पात्र का निर्माण किया है , वहाँ अपरा घोर यथार्थ जगत में विचरण करने वाली नारी है । उसमें गजब का आकर्षण और संमोहन है । विलायत में चार्ल्स से उसकी शादी हुई थी । चार्ल्स को अब उसने तलाक दे दिया है और उससे मुक्त होकर अब भारत में आई है । भारत में उसका व्यक्तित्व विशुद्ध नारीत्व के स्तर पर संचारित हुआ है । वह कभी लेखक प्रसाद की प्रेयसी और कभी जामाता

आदित्य की प्रेयसी के रूप में दिखाई देती है । वह अपने व्यवहार में एकदम स्वच्छंद और निःसंकोच है । प्रेयसीत्व को वह नारी का अधिकार समझती है । प्रेयसीत्व के नारीजन्य आकर्षण और उपयोग को वह भली-भांति जानती है । यही कारण है कि रामेश्वरी के पत्नीत्व स्तर को स्वीकार करते हुए वह सानंद प्रसाद की सेवा करती है और अपने नारीत्व के दान और उपयोग को वह अनैतिक या अनुचित नहीं मानती । जैनेन्द्रजी द्वारा प्रबोधित "प्रेयसीवाद" के दर्शन अपरा में होते हैं । प्रसाद को उपपत्नी होने में भी उसे कोई अनिष्ट नज़र नहीं आता । इसका एक कारण यह भी है कि इस संदर्भ में प्रसाद की पत्नी रामेश्वरी भी अनुकूल है । वह सभी तरह से पति की अनुगता है । पति की यात्रा को सुखद बनाने के लिए पति को दूसरी स्त्री को सौंपने में भी वह झिझकती नहीं है । पति और अपरा के संबंधों को वह स्वस्थतापूर्वक ग्रहण करती है, बल्कि वहाँ अपरा के प्रति "सौतिया डाह" न रखकर "सख्यपना" निभाती है । किन्तु वही अपरा जब जामाता आदित्य के साथ घनिष्ठता बढ़ाती है, तो वह कुछ सचेत और चिंतित दिखाई पड़ती है । हालांकि प्रसाद इस संदर्भ में निश्चिंत है । वह अपने प्रेयसी रूप से आदित्य में स्त्री के प्रति चाहत का भाव पैदा करती है । आदित्य और चारु के संबंधों में पुनः गरमाहट लाने का काम अपरा करती है । वह अपने नारीजन्य आकर्षण से धनाढ्यों से आश्रम के लिए भी आर्थिक सहायता जुटाती है । कई बार अपरा एक अनबूझ पहेली-सी दिखती है । उपन्यास के अंत में दिखाया है कि अपरा के कारण ही चारु के जीवन में पुनः बहार लौट आती है । रामेश्वरी प्रसाद से कहती है —" अब मुझे ढारस है । पहले डर रहता था पर अब चारु — अब सब ठीक है । ... ठीक है । पहेली ही है । क्या कहूं, कैसे तुमसे कहूं — कह रही थी चारु कि अपरा ने अपना तन-बदन दिखाया था । जगह-जगह निशान पड़े हुए थे । अपरा ने कहा, चारु, मैं तो अपने में से वह सब खो चुकी हूं । पर चारु तुम इन्हें दे सकती हो । तुम्हारा

हक है और तुममें वह सब है । अरमान है, उमर है । बताया कि आदित्य हुकूमत करते हैं, कोई उन पर नहीं करता । चारु तुम नहीं समझती, उनका मन इसीके लिए भूखा हो सकता है । अपने ऊपर किसीको सहने के लिए । क्या कोई उन्हें ताबेदार नहीं बना सकता -- चारु, तुम यह करोगी तो तुम खुश होगी, वह खुश होंगे । प्यार में तुम पहल लो, अपने प्यार में तुम बेबस और बेरहम बनो ... ऐसे जाने क्या-क्या कहती रही । और आदित्य के आने के अगले दिन चारु घर पर इतनी खुश, इतनी खुश-खुश आई कि मैं क्या कहूँ ... और अपनी नयी बीती रात को याद कर वह बड़ी हँस रही थी ... समझे ? इसलिए अब डर नहीं रहा ।" [130]

अपरा एक दबंग और स्वच्छंद व्यक्तित्व की नारी है । "मुक्तिबोध" की नीलिमा की भाँति अपरा भी नारी को पुरुष के लिए चुनौती मानती है । वह कहती है -- "वुमन इज टु मैन ए चैलेंज, एन इंड्यु-समेण्ट, ए फुलफिलमेण्ट एण्ड फाइनली ए डिस-इल्यूजनमेण्ट ।" [131] आदित्य के संदर्भ में वह कहती है -- "उसको संघर्ष चाहिए, चुनौती चाहिए, जीत चाहिए -- वह सब मिलेगा और अन्त में डिसइल्यूजन-मेण्ट भी मुझसे मिलेगा ।" [132] उसका व्यक्तित्व दबंग है । स्थान, परिस्थिति और आयु-भेद की वह तनिक परवाह नहीं करती । ट्रेन में वह प्रौढ़ प्रसाद की पत्नी की स्थानापन्न बन जाती है । कूपे को उसने "मिस्टर एण्ड मिसेज प्रसाद" के नाम से ही बुक करवाया है । प्रसाद को यह अच्छा नहीं लगता, तब वह कहती है -- "क्या ठीक नहीं है ? मेरा स्त्री होना ठीक नहीं ? या आपका पुरुष होना ठीक नहीं है ? या ऐसा होने पर दोनों का पास-पास होना ठीक नहीं है ?" [133] प्रसाद के डरने पर वह उसे कायर मानती है । प्रसाद पूछते हैं -- "हाउ कुड यू टेल ए लाई ?" तो अपरा का उत्तर है -- "ए लाई यू से ? व्हट आई डू मीन टु आफिशियेट युअर लाइफ ।" [134] इस प्रकार हम देखते हैं कि अपरा एक स्वतंत्र, स्वच्छंद, दबंग, नाटकीय साथ ही निर्द्वन्द्व और निर्लिप्त नारी है ।

वनानी :

"अनंतर" उपन्यास का दूसरा नारी पात्र है वनानी या वन्या। लेखक ने वन्या का निर्माण अपरा की विपरीतता (कॉन्ट्रास्ट) में किया है। जहाँ अपरा स्वतंत्र और स्वच्छंद है, वहाँ वनानी मर्यादाशील, नीति-नियमों को माननेवाली, ऊँचे विचारों में रहने वाली एक आदर्शवादी युवा नारी है। विवाह न करके वह शुरू से ही अध्यात्म-चिंतन में डूबी रहती है। इसी अध्यात्म-चिंतन के संदर्भ में वह अनेक देशों में घूम आई है। यूरोप में भी चार-पाँच महीने रह आई है। इतना होने पर भी उसका हृदय कुछ मामलों में संकुचित है। तथाकथित धार्मिक वृत्तिवाले लोग जिस प्रकार के घेरों में कैद हो जाते हैं, वन्या भी उनसे मुक्त नहीं हो पाई है। आबू में प्रसाद के साथ अपरा भी वन्या के घर ठहरती है। अपरा प्रसादजी की देखभाल के लिए उनके साथ आई थी। तब वन्या अपरा के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती। वह उसे हमेशा संदेहास्पद दृष्टि से देखती रहती है और उसके सोने की व्यवस्था नौकरानी पार्वती के साथ करती है। अपरा जब गवर्नर की पार्टी में जाती है, तब भी वह उस पर व्यंग्य करती है। अपरा का प्रसाद के प्रति जो व्यवहार है, वह उसे मर्यादा के बाहर का लगता है। इसका कुछ संकेत प्रसाद-वन्या के संवादों से झलकता है। यथा — प्रसाद वन्या से कहते हैं — "सुनो, तुम्हारा घर तुम्हें लगता हो कि अपवित्र हो रहा है तो बता देना।" वन्या कहती है — "आप इसे ठीक समझते हैं?" वन्या ने अपरा पर शंका की थी, इसीको लेकर प्रसाद कहते हैं — "नहीं, संशय को ठीक नहीं समझता। तुम्हें कुछ था तो मुझे कहती, अपरा से कहती। यों अपने मन में क्यों रखे रह गयी? तुम्हारा अध्यात्म इसकी इजाजत देता है?"[135] इस पर वन्या तुरंत कहती है — "नहीं, अनैतिकता को इजाजत नहीं देता और व्यवहार की मर्यादाएँ सौंपता है।"[136]

वन्या के संदर्भ में स्वयं लेखक की टिप्पणी है — "वन्या नि ऊँचे विचार की महिला है। विवाह नहीं किया और आरंभ से अध्यात्म-चिंतन में रही है। वाग्मी, कुशल और प्रखर। वक्तृता करती है तो अनिरोध्य हो जाती है। इधर अध्यात्म का स्थान क्रमशः विश्व और जीवन-चिंतन लेता जा रहा है। उसी संबंध से अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क बन गए हैं। और वहाँ, सुनते हैं, माँग भी बढ़ती जा रही है।"[137]

वन्या के चरित्र के संदर्भ में डा. बिजली प्रभा प्रकाश के विचार ध्यातव्य प्रतीत होते हैं — "वन्या अपने को अध्यात्मवृत्ति की कहती है, धार्मिक मानती है, आश्रम खोलती है। परन्तु क्या वन्या का हृदय सांसारिक आयोजना से मुक्त है? क्या वन्या का आचरण धार्मिक है। उसके विचार संकीर्ण हैं। उसकी दृष्टि केवल दूसरे के कार्यों में त्रुटि निकालने में लगी रहती है। अपरा वन्या की कितनी सहायता करती है फिर भी वन्या का हृदय अपरा के प्रति साफ नहीं है। वन्या अपने को बहुत पवित्र, धर्मात्मा, अध्यात्म की ज्ञाता इत्यादि समझती है। इसका उसे गर्व है। परन्तु पाठक के मन को अपरा ही अधिक आकृष्ट करती है।"[138]

<u>चारु :</u>

चारु भी "अंतर" उपन्यास का एक नारी पात्र है। वह प्रसाद और रामेश्वरी की पुत्री तथा आदित्य की पत्नी है। वह भी साधारण पत्नियों की तरह है। स्त्री-सहज ईर्ष्या, द्वेष और शंका के भाव उसमें रहते हैं। पति आदित्य उद्योगपति हैं। सुंदर और प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी हैं। अतः पति की ओर से वह निरंतर शंकित चिंताग्रस्त रहती है। अपरा और आदित्य की बढ़ती घनिष्ठता उसे परेशान कर डालती है। एक समय तो वह आदित्य से अलग होने की भी सोच लेती है। परन्तु प्रसाद उसे हमेशा समझाते रहते हैं। उसे "आउट डोर लाइफ" के लिए प्रेरित करते हैं। समझाते हैं कि उसे स्वयं को अधिक-से-अधिक

व्यस्त रखना चाहिए और अपने बच्चों में ध्यान लगाना चाहिए । पिता के कहने पर चारु कुछ समय के लिए तो स्थिर हो जाती है, परन्तु कुछ समय बाद पुनः उसके मन में शंका के कीड़े कुलबुलाते हैं और वह दुःखी हो जाती है । चारु को जब ज्ञात होता है कि अपरा आदित्य के साथ एक ही होटल में रह रही है, तो वह बहुत ही व्याकुल हो जाती है । अपनी माता [illegible] रामेश्वरी से भी वह कहती है । रामेश्वरी प्रसाद से कहती है और एक स्थान पर तो वह बहुत ही उग्र हो जाती है । किन्तु प्रसाद माँ-बेटी दोनों को समझाते रहते हैं । अन्ततः यह गुत्थी भी अपरा के द्वारा ही सुलझती है । बम्बई से चारु के नाम अपरा का एक पत्र आता है । पत्र को पढ़कर चारु अत्यन्त प्रसन्न हो उठती है । उसकी सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं । अपरा आदित्य का अहं चूर करती है और ऐसा करके वह उसे चारु के प्रति अधिक निष्ठावान बनाती है । चारु का सारा डर गायब हो जाता है और अपरा जब दिल्ली से आती है तो वह उसे क्षमा कर देती है, इतना ही नहीं अपनी माँ रामेश्वरी से भी क्षमा दिलवा देती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चारु में भारतीय सती नारी के सभी गुण विद्यमान हैं । वह अपने पति आदित्य और बच्चों को खूब चाहती है । पति की प्रसन्नता के लिए वह कुछ भी करने को तत्पर रहती है । परन्तु एक साधारण नारी की दुर्बलता उसमें भी है । वह आदित्य की चारित्रिक कमजोरी के कारण डरी-डरी-सी रहती है । किन्तु उसका यह डर भी अन्ततः अपरा ही दूर करती है । अपरा उसे पुरुष को अपने वशवर्ती करने के गुर सिखाती है । वह उसे समझाती है कि वह जितनी ही आदित्य की ओर से बेपरवाह होगी वह उतने ही वेग से उसकी ओर खींचा चला आयेगा । वह चारु को संकोच छोड़ने की भी सलाह देती है और कहती है कि प्यार में वह पहल करे । उसमें बेहया और बेरहम बन जाए । अपरा के बताए रास्ते पर चलने से चारु को बेइन्तिहा प्यार मिलता है और वह खिल उठती है । इस प्रकार चारु अपनी घर-गृहस्थी में मग्न रहने वाली एक सरल नारी है ।

<u>रामेश्वरी :</u>

रामेश्वरी " अनंतर" उपन्यास का एक गौण नारी पात्र है । ऐसा लगता है कि रामेश्वरी जैनेन्द्र के उपन्यास "मुक्तिबोध" की राजश्री का ही दूसरा रूप है । रामेश्वरी प्रसाद की पत्नी है । उसके संस्कार एक मध्यवर्गीय पत्नी के हैं । उसे अपने पति में अटूट श्रद्धा है । अतः पति के किसी भी काम में मिन-मेख नहीं निकालती । प्रसाद और अपरा के संबंधों को लेकर भी वह निश्चिंत है । वह सब प्रकार से प्रसाद की अनुगता है । एक उम्र के बाद मध्यवर्गीय प्रौढ़ाएं अपने पतियों के संदर्भ में निश्चिंत हो जाती हैं और उनके अन्य स्त्रियों के संबंधों को भी नज़रअन्दाज कर जाती हैं, ठीक उसी प्रकार की स्थिति रामेश्वरी की है । उसमें अपरा के लिए ईर्ष्या-भाव नाममात्र को भी नहीं है । उसमें हमें सफल पत्नीत्व, सुदृढ़ वात्सल्य और पारिवारिक ममत्व की भावना के दर्शन होते हैं । अब उसमें मैदानी नदी की स्थिरता और गंभीरता आ गई है । परंतु वही रामेश्वरी विकल और व्यथित हो जाती है, जब वह महसूस करती है कि अपरा के कारण उसकी बेटी चारु का दाम्पत्य भी टूटने के कगार पर है । यथा —" अपरा चली गई और रामेश्वरी सन्नाटा-सा खाये खड़ी रह गई । जैसे कुछ अपने में तमय लगा । बोलीं- "इस कुलच्छनी को फिर तुमने घर में बुलाया । क्या बचा है अब जो यहां आग लगाने आयी है । कहे देती हूं चारु को कि ~~सत्यानासिनी~~ सत्यानासिनी को घर में न घुसने दे । और तुम बैठे हो बड़ी मूरत बने हुए जैसे कुछ जानते ही नहीं ।" [159] परंतु अपरा की बातों से जब चारु का दिल साफ हो जाता है और वही जब अपनी माँ को कहती है कि वह अपरा को माफ कर दे, तब वह अपरा को भी माफ कर देती है । यथा —" ले उठ अब और कभी ऐसा पागलपन न करना । ... बस अब यह बकवास बंद कर अपरा । बड़ी अक्ल वाली बनती है, प्यार वाली बनती है । प्यार वह है जो मुंह पे आता है ? छिः - लो जा और सामने मु से दूर हो जा ।...

अपरा ने राजेश्वरी को देखा और भीतर ही भीतर प्रभावित हुई। उस चेहरे पर जितना काठिन्य था, मानों साथ उतनी ही वदान्यता थी।"[140] तो यही है राजेश्वरी।

## "अनामस्वामी" उपन्यास में निरूपित नारी पात्र :

लेखकीय प्राक्कथन के अनुसार "अनामस्वामी" उपन्यास में उन्होंने "त्यागपत्र" के छूटे तंतुओं को पुनः साधने का प्रयत्न किया है। त्यागपत्र देने के बाद के जज साहब को यहाँ उपस्थित किया गया है। सन् 1942 में लेखक ने इसे लिखना आरंभ किया था, किन्तु फिर बीच में छूट गया और तीस साल के बाद, अर्थात् 1972 के बाद, यह प्रकाशित हो रहा है। बारहवें परिच्छेद तक पुस्तक में विवेचन भर है, कथा नहीं है। कथानक "त्यागपत्र" के नायक की अगली कड़ी है। "चेतावनी है कि अधुनातम सभ्यता एवं उनसे निर्मित मूल्यों के प्रति क्या बुद्धिवाद आत्मघात का पर्याय है?"[141] तथा "आणविक शस्त्र आणविक चिंतन से अधिक संहारक नहीं है और समय रहते यह पहचान लेना भावी की आशा के लिए आवश्यक है।"[142] उपन्यास के नारी पात्रों में उदिता, वसुंधरा तथा मंजुला आदि हैं।

### उदिता :

उदिता "अनामस्वामी उपन्यास का सर्वाधिक सशक्त नारी पात्र है। "व्यतीत" उपन्यास में भी उदिता का चरित्र आता है, किन्तु वहाँ वह एक गौण पात्र के रूप में आया है। "अनामस्वामी" की उदिता वर्तमान पीढ़ी की एक साकार प्रतिमा है। ऐसा समर्थ और जिजीविषापूर्ण पात्र "दशार्क" में रंजना का है। किन्तु वह भी अन्त में टूट सी जाती है। उदिता टूटती नहीं है। वह छात्रा है। लक्ष्मीत्थान परिषद की सदस्या है। वह प्रोफेसर शंकर उपाध्याय जैसे सशक्त व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित

है । उसके संदर्भ में सर दयाल ठीक ही कहते हैं — " उदिता हम से हुई हो, पर वह स्वयं है, स्वतंत्र है । भीतर उसके झाँकना हो नहीं पाता । झाँकते डर होता है । कुछ भीतर चल रहा है । जिसे वह गह नहीं पाती । "[145] वह नयी पीढ़ी की है । किसी भी प्रकार का नियंत्रण वह सहने को तैयार नहीं है । सर दयाल जब उससे पूछते हैं कि वह कहाँ गयी थी तो वह उत्तर देना भी उचित नहीं समझती । उसका विवाह-संस्था में भी विश्वास नहीं है । मुक्त प्रेम का उसके मस्तिष्क में भी उसे कोई झिझक नहीं है ।

यह वनिता पी० दयाल की मालिन है । मंजुला उनकी बेटी है । वह विधवा है, अतः माँ-बेटी दोनों सर दयाल की जिम्मेदारी हैं । वह युनिवर्सिटी में पढ़ती है और बहुत ही तेज और नवीन है । धार्मिक ढोंग-ढकोसलों पर उसे विश्वास नहीं है । युनिवर्सिटी में उसने समाजविज्ञान को लिया है । अन्तःस्वामी का आश्रम हरिद्वार में है । वे महात्मा गांधी के प्रतीक रूप में आये हैं । वनिता पी० दयाल के लिए वे एक श्रद्धेय व्यक्तित्व है । पी० दयाल और मंजुला कभी-कभी आश्रम में जाते हैं । वे उदिता को भी आश्रम जाने के लिए कहते हैं परन्तु उदिता को आश्रम में जाना अच्छा नहीं लगता है । अन्तःस्वामी को ज्ञात है कि उदिता की सोच दूसरे प्रकार की है, तथापि वे उसका स्वागत करते हैं । एक स्थान पर वे कहते हैं — " देखो, यह उदिता आ रही है । शायद असंतुष्ट है । तरुणों का यह असंतोष ही दैवी भाव है । प्रगति सदा उसीसे चलती है । "[146]

सर पी० दयाल के लिए स्वामीजी एक पूज्य और श्रद्धेय व्यक्ति हैं, किन्तु उदिता बेबाक और बेखौफ ढंग से स्वामीजी के सामने ही उनकी प्रवृत्तियों की आलोचना करती है । यथा — " यह क्या आपने पिंजरापोल खोल रखा है स्वामीजी ? साधना के नाम पर आप आदमी को छोटा बनाते हैं । विज्ञान ने उस पर की सीमाओं को हटाया है । वह विराट बन रहा है । चाँद तक तो पहुँच ही गया है, कल मंगल को छू सकता है । आप यहाँ विज्ञान की क्षमताओं से मुँह मोड़कर जाने किस प्रकार की साधना चाहते हैं ? मैंने नाना से कहा था कि मैं यहाँ

नहीं आना चाहती । आकर दुःख होता है कि दूसरे देश कहाँ चले जा रहे हैं और हम यहाँ किस व्यर्थता पर आसन जमाए बैठे हैं ।"[145] अतः हम देख सकते हैं कि उस पर विज्ञान और भौतिकवादी चिंतन का काफी प्रभाव है । अनामस्वामी से वह कहती है — "जी नहीं, मैं नास्तिक बनी हूँ । आपका ईश्वर मुझे भरमा नहीं सकता । और यह क्या पंथ है कि हम मैं संतुष्ट रहो । पुरुषार्थ क्या हमें व्यर्थ मिला है ? व्यक्ति की सृजन-शक्ति का यह अपमान है कि उसे निर्माण से और उपभोग से पराङ्मुख किया जाय । ऐसे उसकी शक्तियाँ निश्चेतन होती हैं और आदमी भ्रम-मूढ़ताओं का पुतला बन कर रह जाता है ।"[146]

उदिता शंकर उपाध्याय को गुरु मानती है । वे उसके मनोविज्ञान के प्रोफेसर हैं । उनके कारण ही वह तत्त्व दर्शन की प्रवृत्ति में लगी है । उदिता के कारण उसकी माँ मंजुला तथा बड़ी-बड़ी जज्जिदा बी. दयाल भी चिंतित हो जाते हैं । परंतु अनाम-स्वामी का विश्वास है कि उदिता स्वयं अपना रास्ता बना लेगी । स्वामीजी का यह सहज-भाव बी. दयाल को कभी अखरता भी है । परंतु वे भी स्वयं को विवश समझते हैं ।

उदिता तरुणों की टुकड़ी के साथ अमरिका जाती है । वहाँ शंकर उपाध्याय के भतीजे के साथ रहती है । उनके साथ एक और व्यक्ति भी होता है । यहाँ अमरिका के उन्मुक्त समाज का भी कुछ चित्रण किया गया है । अमरिका में उदिता के जीवन के बारे में एक स्थान पर लेखक लिखते हैं — "प्यार हुआ, छलना हुई, परित्यक्ता बनी और दुःख शोक भी उसने चिट्ठी लिखी । किन्तु दूर आगे निकल गई थी, जीवन में भँवर पड़ गया था । उपाय न दीखता था ।"[147] उपन्यास के अंत में उदिता के संदर्भ में कुछ संकेत मिलते हैं । यथा — एम.ए. होने से पूर्व ही उदिता कठि-नाई में पड़ी, सावधान रहते हुए भी गर्भ ठहरा जिससे छुटना उसे

जरूरी न लगा । युवक दोनों सफलताओं की दिशाओं में व्यस्त थे और उसने पाया कि वह अकेली है । हिम्मत उसने नहीं हारी । बच्चा हुआ, एम.ए. हुई । बच्चा शिशु-निकेतन में रखा गया, वहाँ कुछ प्रयत्न से वह भी शिक्षिका की जगह पा गई । प्रेम हुआ, टूटा । फिर हुआ, फिर टूटा । तीसरे प्रेम पर दोनों ने विवाह स्वीकार किया । वह अब स्टेट्स में ही सुख-सुविधा और प्रेम से है । इसी पति से उसे एक पुत्री है, एक पुत्र है और चिट्ठियाँ उसकी मंजुला के पास आती रहती हैं । वह तब से भारत आयी नहीं है । शंकर उपाध्याय के जीवन और मृत्यु के अधिकाधिक ब्यौरे पाने का प्रयत्न करती है । मालूम हुआ कि वह उपाध्याय की स्मृति में एक स्मारक खड़ा करने में लगी है । अच्छा सहयोग मिल रहा है और सफलता का उसे पूरा विश्वास है ।[148] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उदिता एक नयी पढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली लड़की है । वह उपदेश से नहीं अनुभव से सीखना चाहती है । उसका चरित्र वैयक्तिक-चरित्र (Individual character) की कोटि में आता है । उसमें निरंतर गतिशीलता है । उसमें आधुनिक नारी के तेवर मिलते हैं ।

<u>वसुंधरा :</u>

वसुंधरा "अनामस्वामी" उपन्यास की नायिका है । कभी-कभी ऐसा ~~प्रतीत~~ प्रतीत होता है कि उदिता उपन्यास की नायिका है । किन्तु ऐसा नहीं है । वस्तुतः पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव में नारी की भटकन को रेखांकित करने के उद्देश्य से ही लेखक ने उदिता की सृष्टि की है । उपन्यास के केन्द्र में तो वसुंधरा ही है । अतः उसे ही उपन्यास की नायिका कहा जा सकता है । वसुंधरा एक सुशिक्षित एवं ~~अतीव~~ अतीव सुंदरी युवती है । इलाहाबाद युनिवर्सिटी में पढ़ते हुए वह शंकर उपाध्याय को चाहने लगी थी । वह शंकर उपाध्याय की बौद्धिक प्रतिभा से आकर्षित थी, किन्तु उसका विवाह कुमार से होता है । कुमार अपाहिज और लकवाग्रस्त है ।

कुमार वसुंधरा को शारीरिक सुख नहीं दे सकता । उसे माँ होने का गौरव नहीं दे सकता । किन्तु कुमार उदार है । वह वसुंधरा को शंकर उपाध्याय से संबंध स्थापित करने की छूट देता है । परंतु उपाध्याय एक अभिमानी और "इगोइस्ट" व्यक्ति है । वह बार-बार वसुंधरा को अपमानित करता है । एक बार ट्रेन के डब्बे में वह वसुंधरा को सम्मोहित कर समर्पण की स्थिति तक ले आता है । उसके सम्मोहन में रीझी वसुंधरा समर्पण के लिए आतुर हो जाती है, पर उपाध्याय वसुंधरा को नहीं स्वीकारता । नितान्त निर्वसना वसुंधरा पर वह अट्टहास करता है । इस घटना के बाद वसुंधरा को आत्मग्लानि होती है और उपाध्याय को वह घृणा करने लगती है । वह उसके प्रति कठोर हो जाती है । वहाँ से भागकर वह अनामस्वामी के आश्रम में आ जाती है । उपाध्याय वसुंधरा के पीछे-पीछे आश्रम में आता है । तब वसुंधरा उसे खरी-खोटी सुनाती है । उक्त घटना से वसुंधरा इतनी क्षुब्ध हो जाती है कि वह उपाध्याय से प्रतिशोध लेने की ठान लेती है । अतः ट्रेन में एकान्त मिलने पर वह उपाध्याय को नामर्द कहकर बार-बार चिढ़ाती है । वह उसकी मर्दानगी को ललकारती है । उसकी ऐसी अपमानजनक बातों से उत्तेजित होकर उपाध्याय जब उसे लेने के लिए आगे बढ़ता है, तब वसुंधरा उसके मुँह पर थप्पड़ मारकर अपने अपमान का बदला लेती है । वह उपाध्याय को खबरदार करते हुए कहती है — "मैं तुम्हारी नहीं हूँ । अक्षत हुई हूँ, पर उनकी खातिर कि जिनकी होकर मैं आई हूँ । वह मुझे अधूरी रख यहाँ देखना नहीं चाहते, पुरुष के योग से मुझे भरपूर पाना चाहते हैं । पर तुम पुरुष हो नहीं । फिर महापुरुष हो या कापुरुष हो, मुझे लेना-देना नहीं है ... मैं ऊपर बर्थ पर जा रही हूँ । एक शब्द आगे कहने की जरूरत नहीं है । लेक्चर देना वहाँ आश्रम में । डरते होंगे तुमसे हमारे कुमार ... क्या नहीं आई थी तुम्हें — विद्रुप उस नारी पर ठठाकर हँसने में ? माना होगा उसके अगौरव में तुमने अपना गौरव ... तो कहती हूँ, जरा

हरकत की — तो हममें से एक रहेगा, दूसरा नहीं रह पायगा। तुमको मुझे इसी ट्रेन में मार डालना होगा। नहीं तो मेरी खैर चाहो तो अंदर से रहना।" 149

उपन्यास के अंत में वसुंधरा की मृत्यु की घटना को आलेखित किया गया है। वसुंधरा शैया पर नग्न पड़ी थी। वह मर चुकी थी। उपाध्याय ने उसे जहर की सूई देकर मार डाला था। वह अनाम से कहता है — "उन्हीं मरना हुआ है। जहर की सूई देकर मैंने मारा है। मेरा विवाह हुआ था, पत्नी भी ऐसे ही मरी। आप साक्षी रहियेगा। .... मैं फांसी चाहता हूं।" 150 इस घटना के दस साल बाद उपाध्याय भी आत्महत्या कर लेता है। ऐसे भौतिकवादी चिंतन का यही परिणाम हो सकता है। प्रस्तुत उपन्यास में वसुंधरा का जो चित्रण हुआ है उसमें उसकी असाधारणता प्रकट होती है। कुमार के बाद उसका कोई नहीं है। बावजूद इसके वह जमीन को दान में दे देती है तथा किसानों का मुआवजा चुकाने के लिए अपने बेश कीमती गहने बेचने के लिए निकालती है, इससे उसके चरित्र की महानता और उदात्तता प्रकट होती है।

<u>मंजुला :</u>

मंजुला "अनामस्वामी" उपन्यास का एक गौण नारी पात्र है। वह जस्टिस पी. दयाल की बेटी है। विधवा है। एक बेटी है उदिता। उसके साथ अपने पिता के यहां रहती है। जस्टिस पी. दयाल एक न्यायप्रिय, सत्यप्रिय, चिंतनशील व्यक्ति है। जीवन की समस्याओं के प्रति उनकी कुछ वितरागी वृत्ति दृष्टिगोचर होती है। आर्थिक दृष्टि से संपन्न है। मंजुला अपने पिता का खूब ख्याल रखती है। उनका बंगला हरद्वार में है। हरद्वार में ही अनामस्वामी का आश्रम भी है। पिता-पुत्री दोनों के लिए स्वामी जी एक श्रद्धेय व्यक्ति है। वैसे तो अपने पिता के स्वास्थ्य का ध्यान रखना ही मंजुला की दिनचर्या के केन्द्र में है, ×××××

तथापि अपनी बेटी उदिता के लिए भी वह काफी चिंतित रहती है। उदिता नये जमाने की आज़ाद ख्याल लड़की है, इसलिए भी उसे उसकी अधिक चिन्ता रहती है। रानी वसुंधरा के प्रति भी मंजुला सहानुभूति-पूर्ण और करुणार्द्र है। मंजुला एक शान्त, गंभीर, संतोषी, अध्ययनशील प्रकृति की घरेलू किस्म की महिला है। वस्तुतः समाज में ऐसे लोगों की भी आवश्यकता है। ये किसी व्यवस्था में नींव का काम करते हैं। जस्टिस पी. दयाल जो अपना समय चिंतन-मनन-अध्ययन में निकाल सकते हैं, उसके पीछे मंजुला की देखभाल ही कारणभूत है। अपने स्वास्थ्य के लिए वे पूर्णतया मंजुला पर निर्भर है। यहाँ बेटी माँ का रोल भी अदा कर रही है।

<u>"मुक्तिबोध" उपन्यास में चित्रित नारी पात्र :</u>

यह उपन्यास प्रथमतः सन् 1965 में प्रकाशित हुआ। राजनीतिक पृष्ठभूमि होते हुए भी उसमें मानसिक ऊहापोह को ही केन्द्र में रखा गया है। उपन्यास के नायक सहाय एक राजनीतिक व्यक्ति हैं। उनका व्यक्तित्व प्रौढ़ एवं परिपक्व है। कामराज योजना के तहत वे सक्रिय राजनीति से अलग होना चाहते हैं, परंतु नीलिमा जो सहाय की प्रेरणा और प्रेयसी है वह चाहती है कि वे पद और सत्ता में बने रहें। उनकी पुत्री और दामाद भी यही चाहते हैं। इसी मानसिक ऊहापोह का यह उपन्यास है। उपन्यास के फ्लैप पर दिया गया है, और यथार्थ है, "दुविधा" का इतना जटिल, इतना गहन, इतना विस्तृत चित्रण शायद ही कहीं किया गया हो।" अत्यन्त प्रौढ़ और पुष्ट वय के भावना-संसार को यहाँ सहज रूप में प्रकट किया गया है। प्रौढ़ और परिपक्व प्रेम-भावना की अभिव्यंजना भी सशक्त व संयत ढंग से हुई है। उपन्यास के नारी पात्रों में नीलिमा, राजश्री, समारा, अंजलि आदि हैं। नीलिमा सहायबाबू की प्रेयसी है। राजश्री पत्नी है। "अंतर" उपन्यास की राजेश्वरी की याद ताजा हो जाती है। समारा एक कवि कन्या है। अंजलि उनकी बेटी है।

नीलिमा :

नीलिमा "मुक्तिबोध" उपन्यास का एक शिष्ट, शिक्षित, विदग्ध, बुद्धि-प्रतिभा-सम्पन्न, सुशिक्षित, सिल्की तथा तेज-तर्रार नारी पात्र है। नारी-शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ अब हमारे समाज में कुछ ऐसी नारियाँ बुद्धिमान होती हैं जिनकी बुद्धिमत्ता का अंक काफी ऊँचा होता है। ये नारियाँ समाज, व्यवस्था तथा राजनीतिक गतिविधियों को एक निश्चित अपेक्षित दिशा में मोड़ने की क्षमता रखती हैं। मोहन राकेश कृत "अँधेरे बन्द कमरे" की नीलिमा, कृष्णा सोबती कृत "सूरजमुखी अँधेरे के" की रत्तिका, उषा प्रियंवदा कृत "रुकोगी नहीं राधिका ?" की राधिका, लक्ष्मीकांत वर्मा कृत "टेराकोटा" की मिति, निर्मल वर्मा कृत "वे दिन" की रायना, मृदुला गर्ग कृत "चितकोबरा" की मनु, सुरेन्द्र वर्मा कृत "मुझे चाँद चाहिए" की वर्षा वशिष्ठ प्रभृति ऐसे ही तेज-तर्रार नारी पात्र हैं। नीलिमा भी इसी कोटि में आती है।

नीलिमा आला खानदान की है और ऊँची सोसायटी में उसका उठना-बैठना है। वह दर साहब की पत्नी है। दर साहब भारत सरकार की आई.ए.एस. कैडर के अधिकारी हैं और किसी ऊँचे पद पर कार्यरत हैं। नीलिमा भी सहायबाबू की सेक्रेटरी कभी रह चुकी है। उपन्यास में कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि नीलिमा सहायबाबू की प्रेमिका है और उसके सहायबाबू से काफी निकट के ताल्लुकात हैं। सहायबाबू राजनीति में हैं और दर साहब की प्रगति और तरक्की में भी सहायबाबू की एक निश्चित भूमिका है। सहायबाबू अन्य राजनीतिज्ञों की भाँति शुष्क, कोरे और जड़ दिमाग के नहीं हैं। राजनीतिज्ञ होते हुए भी वे काफी भावुक किस्म के व्यक्ति हैं और भारत के भविष्य को लेकर उनकी आँखों में कुछ सपने तैर रहे हैं। नीलिमा भी सहायबाबू को जो पसंद करती है उसके पीछे यही कारण है। यथा — " आदमी सपने के लिए जीता है और औरत उस सपने वाले आदमी के

लिए जीती है । डर के साथ मैं रहती थी । जीती तुम्हारे लिए । तुम्हारे लिए — यानी जो सपने में जगता था और सपने में मरता था । ... लेकिन अब जो सोचने लग गए हो , वह शायद कर्तव्य है , सपना नहीं है । ... सपने से लौट-हार कर तुम जाओगे तो मेरे जीने के लिए क्या आधार रह जाएगा ? " [151] मतलब इनका प्यार गहरा है । केवल शारीरिक या यौन नहीं , आत्मिक । अतः इन संबंधों को सम्पटता नहीं कह सकते । इसमें बौद्धिकता है , संवेदनशीलता है , गहरी समझदारी और विश्वास है । यही कारण है कि सहायबाबू की पत्नी राजश्री भी इन संबंधों को लेकर चिंतित एवं शंकाशील नहीं है , बल्कि कई बार तो वह स्वयं सहायबाबू को नीलिमा से मिलने के लिए प्रेरित करती है । एक स्थान पर नीलिमा के संदर्भ में कहती है —

" नीलिमा हम-तुम जैसी नहीं है । आजाद ख्याल है , इससे लोग जो चाहें समझें । लेकिन मैं तुमसे कहती हूँ कि वह तुम्हें कभी नीचे खींचना नहीं चाहेगी । ... उसके मन में खोट नहीं है । स्वार्थ भी नहीं है । वह स्त्री ऊँचे दर्जे की है । नहीं तो यहाँ मिलने क्यों आती , सीधे अपने होटल नहीं जा सकती थी ? और वैसी होती तो तुमको लेकर मुझसे खुला मजाक कर सकती थी ? " [152]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नीलिमा एक स्वतंत्र विचारों वाली और स्वच्छन्दता महिला है । वह और स्त्रियों से कुछ अलग ही है । उसके लिए कहीं कोई रोक नहीं है । न वह दबने में विश्वास करती है , न दबाने में । सहायबाबू के साथ जो उसके संबंध हैं वह स्वतंत्र और उन्मुक्त हैं । बुरे ख्यालों में वह विश्वास नहीं करती । स्त्री-पुरुष की वास्तविकता का अहसास उसे है और उसे वह नकारना भी नहीं चाहती । xxxx बल्कि ऐसे नकार को वह सत्य से भागना कहती है । तभी तो वह सहायबाबू से कहती है — " मुझे नहीं मालूम था कि तुम कायर निकलोगे । जो स्त्री से अपने को बचाता है

वह सच से अपने को बचाता है । स्त्री कुछ नहीं है और पुरुष के लिए सच की चुनौती के रूप में आती है । मेरा शरीर क्या मेरा अपना नहीं है ? क्या मैं उसके साथ सहज नहीं हो सकती ? सूर्यस्नान कुछ नहीं था , उसकी जगह पूरा प्रकृति स्नान भी हो सकता था । क्यों , क्या मुझे इसका हक नहीं है ? किसीका मन डोलता है , क्या इसलिए मेरा हक कम हो जाता है ? देखो सहाय तुम लोग इज्जतों में और पर्दों में रहकर , जाने भिन्न-भिन्न व्यर्थताओं को अपने साथ लपेट लेते हो और उनमें गौरव मानते हो । यह सब तुम लोगों की झूठी सभ्यता है , ढकोसला है । फिर कहते हो , हम सच को जानना चाहते हैं । तुम्हारा सच कपड़ों में है , लिबास में है , और सच्चाई से डरने में है ।"[153]

नीलिमा के उक्त कथन में से उसकी वैचारिक स्पष्टता उजागर होती है । वह सत्य और निष्ठा में विश्वास करती है । उसका विश्वास है कि अनुशासन भीतर से आना चाहिए । ऊपर से ओढ़ा हुआ अनुशासन , लबादा है , मुखौटा है । ढकोसला है । एक स्थान पर जब सहाय नीलिमा से पूछते हैं कि दर साहब तुम्हें इस कदर आजाद क्यों रखते हैं ? तो उसके जवाब में नीलिमा कहती है — "वह अपने को आजाद रखते हैं , मैं उसमें उनकी सहायता करती हूँ । इसीमें मेरी आजादी अपने आप बन आती है । अपने से पूछो , मेरी आजादी का श्रेय क्या तुम दर को दोगे , मुझे नहीं दोगे ?"[154] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रेम ही नहीं , स्वतंत्रता भी देने से मिलती है ।

नीलिमा एक सुलझी हुई स्त्री है । वह सहाय बाबू में पुनः विश्वास जगाती है । सहायबाबू जो त्याग और आदर्शों की बात करते थे ; उसमें पलायनवाद की बू आती है । परन्तु नीलिमा उन्हें आनेवाले उत्तरदायित्वों को चुनौती के रूप में स्वीकार करने की प्रेरणा देती है । उपन्यास के अन्त में सहायबाबू अपनी पत्नी राजश्री से कहते हैं — "मैं मिनिस्टर हो गया हूँ ।"[155] इस प्रकार नीलिमा ही सहायबाबू को प्रगति के पथ पर अग्रसर कराती है । अन्यथा राजश्री

ने तो पति की हाँ में हाँ मिलाते हुए , सबकुछ छोड़-छाड़कर गाँव जाना स्वीकार कर लिया था । यह नीलिमा ही थी जो सहायबाबू को पुनः राजनीति में ले आती है । इतना ही नहीं , वह सहायबाबू के परिवार की आंतरिक गुत्थियों को भी बुद्धिपूर्वक सुलझाने में भी उनकी मदद करती है । इस प्रकार नीलिमा जैनेन्द्र के नारी पात्रों में एक तेजस्वी नारी पात्र है ।

चरित्रांकन की दृष्टि से देखा जाए तो नीलिमा वैयक्तिक-चरित्र [Individual character] की कोटि में आती है । दूसरी ओर इसे हम गतिशील-चरित्र [Kinetic character] भी कह सकते हैं । उसका व्यक्तित्व बहुआयामी है , अतः उसकी गणना अनेक-परिमाणीय पात्र [Round character] में भी हो सकती है । प्रेमचन्द के उपन्यास "गोदान" की मालती से नीलिमा की तुलना हो सकती है । हिन्दी के औपन्यासिक साहित्य में ऐसे पात्र बहुत कम पाये जाते हैं ।

राजश्री :

राजश्री "मुक्तिबोध" उपन्यास के नायक सहायबाबू की पत्नी हैं । सहायबाबू राजनीति में हैं और मिनिस्ट्री के कुछ मसलों को लेकर कुछ परेशान हैं । राजनीतिक परिवेश की दृष्टि से यह वह समय है जिसमें कामराज नादर योजना के तहत कुछ लोगों को तत्कालीन पदों से शालीनतापूर्वक हटाने का षड्यंत्र चल रहा था । सहायबाबू इस बात को लेकर परेशान रहते हैं । उनके भीतर एक द्वन्द्व चल रहा था कि राजनीति में रहें या सबकुछ छोड़-छाड़कर गाँव में जाकर खेतीबाड़ी का काम करें । इस द्वन्द्वात्मक स्थिति में राजश्री सहायबाबू को सांत्वना देती है । राजश्री के पत्नीत्व में नारीत्व की महत्ता , गरिमा और उदारता है । वह सम्पूर्णतया एक समर्पिता नारी है । वह सहायबाबू को पराजित मनोदशा में नहीं देखना चाहती है । एक

स्थान पर वह कहती है —" तुमने मुझे जो गिनती में नहीं लिया है, तो मत समझना कि ठीक नहीं किया है, या तो अविश्वास में किया है। विश्वास रखना, राजी तुम्हारी है और धरम पत्नी कभी अलग से गिनती के लिए नहीं हुआ करती है। उसका सब धरम पति के साथ होता है।" 156

राजश्री में जहाँ अपने पति सहायबाबू को लेकर उदारता का भाव है, वहाँ उसमें स्त्री-सहज वात्सल्य भाव भी है। और यह वात्सल्य-भाव सहायबाबू के लिए भी है। वह हर तरह से सहायबाबू के अनुकूल होने की चेष्टा करती है। उनकी हर बात की चिन्ता करती है और हर स्थिति में उनका साथ देती है। सहायबाबू और नीलिमा के संबंधों को लेकर भी उसमें किसी प्रकार की कटुता नहीं है। वह सहायबाबू और नीलिमा के बीच जो आत्मीयता के संबंध हैं, उनसे पूर्णतया अवगत है। कई बार सहायबाबू अनुभव करते हैं कि राजश्री नीलिमा से साथ अपना स्वीकार ही चाहती है, शायद नीला का बहिष्कार नहीं।" 157 इस प्रकार राजश्री अपने स्वत्व को भुलाकर पूर्णतया सहायबाबू में लीन हो गई है। इस विचित्र-सी दिखनेवाली उदारता के संदर्भ में जब सहायबाबू राजश्री से पूछते हैं, तब राजश्री उसके रहस्य को इन शब्दों में व्यक्त करती है —" जितना तुमको स्वतंत्र रख सकूंगी, उतने ही तुम मेरे होगे।" 158 राजश्री के इस अति विश्वास के संदर्भ में सहायबाबू जब उससे पूछते है कि क्या उसने उनको देवता समझ रखा है? तो उसके उत्तर में राजश्री कहती है —" हाँ, आदमी में देवता होता है, और पत्नी नहीं, प्रेयसी उसे जगाती है। तुम अपने देवत्व से लड़ते क्यों हो? तुमको तृप्त और प्रसन्न आते देखूं तो क्या इसमें मुझे प्रसन्नता न होगी?" 159 इस प्रकार राजश्री एक समझदार, कुशल, भावुक और गंभीर महिला है। उसमें किसी प्रकार का सतहीपन या छिछोरापन नहीं है। उसके व्यवहार और वाणी में शालीनता के दर्शन होते हैं। सहायबाबू और नीलिमा के संबंधों को लेकर

कोई दूसरी स्त्री होती तो काफी बावेला मचा सकती थी, फूहड़पने का परिचय दे सकती थी, जबानदराज़ हो सकती थी, परन्तु वह ऐसा कुछ भी नहीं करती। वह हर स्थिति में बहुत संयत और सधा हुआ व्यवहार करती है। यद्यपि राजश्री जैसी महिलाएँ समाज में बहुत कम पायी जाती हैं, तथापि यह न समझना चाहिए कि ऐसी महिलाएँ होती ही नहीं हैं। डा॰ चन्द्रकान्त देसाई इसीलिए जैनेन्द्रजी को संभावनाओं का साहित्यकार मानते रहे हैं। [160]

तमारा :

"मुक्तिबोध" उपन्यास का यह एक गौण नारी पात्र है। वह एक रूसी आर्टिस्ट है और उसी तर्ज में हिन्दी बोलती है। वह सहायबाबू की पुत्री अंजलि की सहेली है। वह पहले सहायबाबू से कुछ डरती हुई-सी लगती है, परन्तु ऐसा नहीं है। मौका आने पर वह सहायबाबू को भी साफ तौर पर सुना देती है। अंजलि की बात को लेकर तमारा कहती है — "सच बात बोलना चाहिए इंजिल डार्लिंग [तमारा अंजलि का उच्चारण इंजिल करती है] ठीक बात क्यों नहीं बोलती है। इनका खयाल है मिस्टर सहाय कि आप यह डेरा नहीं रखने वाले हैं। ... मिस्टर सहाय, आप सबसे आशा करते हैं कि वे कर्तव्य में रहेंगे। पर कोई कर्तव्य में नहीं रहता है। सब भौतिक परिस्थिति में रहते हैं।" [161] तमारा की इस बात को लेकर जब सहायबाबू यह कहते हैं कि घर का एक कायदा होता है और उसके अनुसार उसमें बाहर वाले को नहीं आना चाहिए। इस बात पर तमारा सहायबाबू को खरी-खरी सुना देती है। यथा — "भारत में परिवार पर पिता का स्वत्व होता है। यह शायद मुझे भूलना नहीं चाहिए था। आप उस परंपरा में से आए हो सकते हैं, पर माफी माँगती हूँ कि मैंने मान लिया था कि आप उसके अधीन चलकर न रहते होंगे और कन्या का हक भी बराबर मानते होंगे। मैं बाहर की नहीं हूँ, इंजिल की मित्र हूँ।" [162]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि तमारा पाश्चात्य संस्कारों में पली-बढ़ी एक आधुनिक युवती है । अतः परिवार में वह पुत्र-पुत्री को समान मानती है । उसकी सोच है कि पिता के हक पर सभी का अधिकार होना चाहिए । उपन्यास में तमारा के संदर्भ में कहीं-कहीं यह भी संकेत है कि तमारा आर्ट की ओट में विदेशी एजेण्ट है । एक बार तमारा अपनी जेब से अ अखबार की एक कतरन निकालती है जिसमें उसके संवाददाता ने यह लिखा था कि सहायबाबू अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं है । इस पर सहायबाबू तमारा से कहते हैं — " यह अखबार तुम्हारे देश के पक्ष का है । तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इसके पीछे क्या नीयत है । तुमने कुंवर से पहले मुझको यह क्यों नहीं बताया ? " 163

इस प्रकार तमारा का चरित्र कुछ रहस्यमय प्रतीत होता है । वह सहायबाबू के घर भी आती-जाती है, दूसरी ओर कुंवर से भी उसके घनिष्ठ संबंध लगते हैं । सहायबाबू नीलिमा की बात को मानते हैं, यह उसे अच्छा नहीं लगता है । उपन्यास के अन्त में तमारा बिल्कुल अकेली हो जाती है ।

अंजलि :

अंजलि "मुक्तिबोध" उपन्यास का एक गौण नारी पात्र है । वह सहायबाबू और राजश्री की बेटी है । उसका विवाह कुंवर साहब के साथ हुआ है । कुंवर साहब एक उद्योगपति हैं, जो सहायबाबू की स्थिति से लाभ उठाना चाहते हैं । सहायबाबू राजनीति में महत्वपूर्ण पद पर हैं । अंजलि का अपना कोई वजूद नहीं है । वह कुंवर साहब जिस तरह चलाना चाहते हैं उसी तरह चलती है । उसे भी भौतिक सुख-समृद्धि की चाह है । अतः सहायबाबू जब राजनीति छोड़ने की बात करते हैं, तब वह उन पर उखड़ पड़ती है — " आपको जो करना था कर चुके । हमारी सारी उमर पड़ी है । उसका रास्ता क्यों रोकते हैं । आपका मन भर चुका होगा, पर हमें तो अभी सबकुछ पाना है । आप क्या सिर्फ अपने लिए रहेंगे, कि कुछ अपxकेx आये तो चाहे लें, चाहे फेंक दें । हमारी भी उस सबमें

राय है कि नहीं ? बहुमत की बात बाहर ही नहीं , घर में भी चलनी चाहिए । आपने माँ से पूछा ? बेटी से पूछा ? सबसे पूछा ?"[164]

अंजलि की इस बात से सहायबाबू क्रोधित हो जाते हैं और उसे अपनी फ़िजूल की बकवास बन्द करने को कहते हैं , तब भी अंजलि पस्त नहीं होती और सहायबाबू से ज़बानदराज़ी चलाते हुए कहती है — " नहीं बाबूजी , आप अब तक अपनी चलाते रहे । माँ पिसती रहीं , और हम जो बन सकते थे नहीं बन सके । सिर्फ इसलिए कि आपने अपने को माना , हमको साथ नहीं माना ।"[165]

यहाँ हम देख सकते हैं कि यह अंजलि नहीं बोल रही है , परन्तु कुँवर साहब ने जो पट्टी उसे पढ़ाई वह बोल रही है । उपन्यास के अंत में कुँवर साहब किसी मामले में फंस जाते हैं और मामला संगीन रूप धारण करता है । गिरफ्तारी तक की नौबत आ सकती है । तब सहायबाबू के साथ बराबर बकवास करने वाली अंजलि सिसक-सिसक कर रोने लगती है । इस पर राजश्री सहायबाबू से कहती है कि तुम इतने कठोर क्यों हो रहे हो , प्यार या ढारस का एक शब्द नहीं कह सकते क्या ? राजश्री की इस बात पर सहायबाबू अंजलि से कहते हैं — " अंजलि , तुम मेरी बेटी हो । लेकिन कुँवर को वक्त पर गलत रास्ते पर जाने से रोक नहीं सकती हो । बल्कि शायद बढ़ावा देती रही हो । पैसा आराम जो देता है , क्यों ? और अब बाप के पास आती हो ? समझ लो बाप मर गया । वह कुछ नहीं कर सकता है ।"[166] इस पर अंजलि कहती है —" बाबूजी , मेरा दोष नहीं है । दुश्मन आपके हैं , जो हमें फँसाना चाहते हैं , और इस तरह बदनामी आपकी चाहते हैं ।"[167] तब सहायबाबू अंजलि को डाँट देते हैं कि वह कुँवर साहब की पट्टी को ही दोहरा रही है । इस प्रकार से प्रत्यक्षतः तो अंजलि को फटकारते हैं , परन्तु राजश्री को अलग से बुलाकर कहते हैं कि वे विचलित हो रहे हैं ।

यहाँ हम देखते हैं कि प्रारंभ की बोल्ड और साहसी अंजलि अपने पति की बात आने पर कमजोर हो जाती है । अतः एक समझौता-परस्त और सुविधाभोगी उच्चवर्गीय भारतीय नारी के रूप में अंजलि की छवि उभर रही है । अंजलि के रूप में हमारे सामने वे अनेकों बेटियाँ प्रत्यक्ष हो जाती हैं जो अपने पिताओं की अच्छी पोज़िशन से लाभ उठाना चाहती हैं । अंजलि के चरित्र को हम एक वर्गीय चरित्र कह सकते हैं ।

"दशार्क" उपन्यास में निरूपित नारी पात्र :

"दशार्क" जैनेन्द्रजी का अंतिम उपन्यास है । उसका प्रकाशन सन् 1985 में हुआ । किसी प्रकाशक को दस कहानियाँ देने का वादा था । दशार्क में इन दस कहानियों को इस प्रकार गुंफित किया गया है कि वे जुड़कर उसे एक उपन्यास का रूप भी दे । इसमें एक उच्च शिक्षित सम्भ्रान्त नारी की कथा को लिया गया है । उसका विवाह युनिवर्सिटी के एक लेक्चरर महोदय से हुआ था । सात वर्षों के वैवाहिक जीवन में वह माँ बनती है, किन्तु उसका गृहस्थ जीवन बिखर जाता है । पत्नी का अंत होता है और एक नवरमणी का उदय होता है । रंजना को क्या कहा जाए ? वेश्या ? पर वह अपने शरीर का सौदा नहीं करती है । वह वैवाहिक जीवन से ऊबे हुए लोगों को प्रेम देकर उनके अहं को तुष्ट करती है । उसका मानना है कि विवाह में स्त्री पत्नी होकर भी पुरुष को वह नहीं दे सकती जिसका वह भूखा होता है इसलिए वह उस भूख को मिटाने के लिए बाहर जाता है । रंजना ऐसे पुरुषों को प्रेम और ऊष्मा देती है । उपन्यास के प्रमुख पात्र तो हैं रंजना और आनंदलाल । शेष पात्र तो आते जाते रहते हैं । उपन्यास के नारी पात्रों की बात करें तो रंजना के अतिरिक्त इसमें माधुरी या मधुरिमा, पारमिता, शेफालिका आदि नारी पात्र मिलते हैं ।

रंजना :

रंजना "दशार्क" की नायिका है । जैनेन्द्र के अभी तक के नारी पात्रों में कुछ अलग, कुछ विरल । उसे मृणाल, सुनीता, सुखदा तथा उदिता (अनामस्वामी) का विकास कहा जा सकता है । रंजना का जीवन जैनेन्द्र के दर्शन से प्रभावित है । रंजना भी लेखक जैनेन्द्र की तरह तरह-तरह के प्रयोग करती है । उसमें प्रयोग के लिए हिम्मत है, साहस है, दुर्धर्ष संघर्ष और जिजीविषा है । रंजना को लेकर हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में कई विवाद उठे हुए थे । लेखक को कई प्रश्नों का सामना करना पड़ा था । "सारिका" पत्रिका में सितम्बर से लेकर नवम्बर तक (सन् 1983) में खूब चर्चा में यह उपन्यास और उसकी नायिका रंजना रहे हैं । लोगों ने सवाल उठाया था कि रंजना के रूप में लेखक ने एक वेश्या को सम्मानित करने की कोशिश की है, एक "कालगर्ल" को प्रतिष्ठित किया गया है । जैनेन्द्रजी का उत्तर था — रंजना न वेश्या है न कालगर्ल । रंजना अपने पूर्व-जीवन में सरस्वती थी । उसके पति ने युनिवर्सिटी में टॉप किया था । सात वर्ष तक पत्नीत्व निभाया । एक पुत्र की माँ बनी । विवाह जब नहीं निभ पाया तो रंजना बन गई । जब वह ससुराल की न रही, मायके की भी ना रही, तो एक नये व्यक्तित्व का उदय हुआ । अब वह किसी सामाजिक रिश्ते के लिए उत्तरदायी नहीं है । वह स्वतंत्र है । चाहे जैसे जिए । रंजना स्त्री-पुरुष संबंधों पर खूब सोचती है और गहरे मानसिक ऊहापोह के बाद पाती है कि नारी पत्नी रूप में वह सब नहीं दे पाती है जिसकी एक पुरुष को अपेक्षा रहती है । पत्नी से केवल संतान पाकर कोई पुरुष संतुष्ट नहीं हो पाता । वह कोई ऐसी नारी की सौबत चाहता है जिसमें कर्तव्य का कोई भाव न हो और जिसमें निषेध का भी कुछ-कुछ रस हो । रंजना यह समझ लेती है कि स्त्री पुरुष की गहरी आवश्यकता है । उसके व्यवसाय से भी गहरी, विशेषतः संपन्न व सफल पुरुषों में । वह उस नारी के पास आएगा जो उसकी नीचे से नीची गहराई और ऊँचे से ऊँची ऊँचाई की पूर्ति करे । इसकी पूर्ति किसी शास्त्र से, किसी गुरु से,

किसी साधु-संत या किसी ऋषि-मुनि से नहीं हो सकती । रंजना पुरुष की इस आवश्यकतापूर्ति का बीड़ा उठाती है ।

रंजना का दृष्टिकोण कुछ विचित्र और व्यवस्था से हटकर है । उसका कहना है कि स्त्रियों के प्रति पुरुषों में जो आकर्षण है वह नैसर्गिक है और स्त्रियों को इसका फायदा उठाना चाहिए । पत्नी बनकर स्त्री वह अवसर खो देती है, क्योंकि वह प्राप्य और सुलभ हो जाती है । पुरुष का आकर्षण अप्राप्य और दुर्लभ के प्रति होता है । मांस खरीदकर भी खाया जा सकता है और शिकार करके भी खाया जा सकता है । पुरुष की दृष्टि वह दूसरे वाली होती है । रंजना के विचारों से गृहस्थी में सुखी रहने का लोग नाटक करते हैं, वस्तुतः गृहस्थी में पूर्ण तृप्ति का अनुभव कोई नहीं करता । पत्नी बढ़ती है तो पति छूटकर रह जाता है और पति बढ़ता है तो पत्नी कटकर रह जाती है । सभी पुरुष कान्त जैसे नहीं हो सकते और सभी स्त्रियाँ रामेश्वरी या राजश्री जैसी नहीं हो सकतीं । और आगे तो बढ़ना ही है, उसके बिना निस्तार कहाँ ?

ऐसा लगता है कि रंजना की सृष्टि के लिए लेखक ने आवश्यक परिस्थितियों और पात्रों की रचना की है । रंजना पढ़ी-लिखी और विदुषी नारी है : अपने जीवन-यापन के लिए वह कोई दूसरा रास्ता भी अख्तियार कर सकती थी । परंतु वह यह रास्ता चुनती है । क्योंकि यह एक प्रयोग है और सत्य को हमेशा प्रयोगों की दरकार रहती है और ये प्रयोग वे ही कर सकते हैं जो उन्मुक्त हैं, स्वछंद हैं, जिन्हें समाज और उसकी व्यवस्था की कोई दरकार नहीं है । रंजना विवाह-संस्था से छूटकर आयी है, गृहस्थी से अतृप्त होकर आयी है, पुरुष से आहत होकर आयी है । इस व्यवसाय प्रधान व्यवस्था में, सभ्यता में, पैसा आवश्यक है । प्रेम व्यवस्था से बाहर है, अतः वह व्यवस्था से बाहर होकर प्रेम द्वारा पैसा पैदा करती है ।

अपनी इस प्रवृत्ति को वह पूर्णतया नैतिक समझती है। और प्रेम द्वारा उपार्जित इस धन को परोपकार में लगाती है। रंजना का व्यक्तित्व तेजस्वी, दुर्धर्ष, साहसी और पुरुष के प्रति करुणार्द्र है। वह आधुनिक होते हुए भी प्राचीन है और प्राचीन होते हुए भी आधुनिक है। पुरुष, समाज, व्यवस्था आदि से कटकर वह यहाँ आयी है; अतः इनके प्रति उसके मन में वितृष्णा होनी चाहिए, नफ़रत होनी चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं हुआ है। उसके मन में कोई घृणा, कोई वितृष्णा, कोई पूर्वाग्रह नहीं है। सबकी ओर से अपना दिल साफ करके वह प्रेम देने आयी है।

लेकिन सामान्य कालगर्ल या जिस्मफरोशी करने वाली स्त्री से रंजना भिन्न है। वह शरीर को अपना मूलधन समझती है और उसे सुरक्षित व पवित्र रखती है। वह प्रेम और करुणा और मैत्री के द्वारा गृहस्थी से से ऊबे हुए लोगों का उपचार करती है। इससे उसके पास आनेवाले पुरुष "सुखमुखी अँधेरे के" की नायिका रक्तिका (रत्ती) से जैसे क्षुब्ध होकर भागते हैं भागने लगते हैं, आहत होते हैं। इतने आहत कि कई बार उसका अपमान भी करते हैं। वस्तुतः जैनेन्द्रजी ने यहाँ एक ऐसे नारी-पात्र की कल्पना की है, जिसकी अवधारणा पश्चिम में एक दूसरे धरातल पर मिलती है। वहाँ कुछ ऐसी "प्रोफेशनल" महिलाएं होती हैं, जो गृहस्थी की ऊब को मिटाकर, पुरुषों में पुंसत्व फूंकने का काम करती हैं। जो पुरुष अपनी पत्नी के यहाँ पुंसत्व का अनुभव नहीं करते, उनमें पुनः पुंसत्व भरने का काम ये महिलाएँ करती हैं। परन्तु यहाँ भी जैनेन्द्रजी की अवधारणा उसे× उससे पूरी तरह से मेल नहीं खाती है, क्योंकि ये महिलाएँ शरीर के माध्यम से ही ऐसा करती हैं। रंजना अपने अशरीरी प्रेम के द्वारा उसे संपादित करती है। किन्तु रंजना में अन्तर्द्वन्द्व तब उभरता है, जब वह इस निर्वैयक्तिक प्रेम-व्यापार से भी ऊबने लगती है और अन्ततः अपनी गृहस्थी में पुनः लौट जाना चाहती है। वह सोचने लगती है कि दूसरों को जिलाते-जिलाते वह खुद जीना भूल रही है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जैनेन्द्र के नारी-पात्रों में रंगों का अधिक वैविध्य नहीं है। वे अपने पसंदीदा तीन-चार रंग उठाते हैं और उसमें विभिन्न "शेड्स" मिलाकर वैविध्य पैदा करते हैं। मृणाल, सुनीता, सुखदा, नीलिमा, अपरा आदि एक रंग के पात्र हैं; किन्तु "शेड्स" बदल जाते हैं। "दशार्क" की रंजना भी उसी रंग में किन्तु एक अलग ही "शेड" में निर्मित नारी है। वह विचित्र और विलक्षण है। एक ही साथ आधुनिक — बल्कि अत्याधुनिक — और प्राचीन भी। एक स्थान पर वह वेश्याओं को संबोधित करते हुए वह कहती है —

"मेरा कहना है कि विवाह धर्म है, समाज धर्म है, गृहस्थ धर्म है। पर धर्म प्यार भी है और वह बड़ा इस लिए है कि समष्टि धर्म है, आत्मगत धर्म है। ... वह [पत्नी] प्रेम-धर्म नहीं जानती। बस शरीर-धर्म पालती है। तो इतना तो प्रकृति का धर्म हुआ कि बाल-बच्चे हो गये। यह तो जानवरों में भी होता है। फिर आदमी और जानवर में फर्क क्या? फर्क यह है कि आदमी भोग की भूख को ही प्रेम नहीं मानता। शरीर पर प्रेम खत्म नहीं है। ... इस तन की मदद को प्यास है और बहुत-सी औरतें वैसे जीती हैं। लेकिन मैंने पाया कि तन से भी ज्यादा कुछ प्यास है जो मन की है। प्यास की उस तरस को, जाइब को कोई नहीं पूछता। वह तन की नहीं उससे बड़े प्यार की प्यास है। मैंने उसे समझा और पाया कि उस प्यास में प्राणों के रोग का गहरा इलाज भी है। वह इलाज मुझसे मिला है, मिलता है और पैसा अपने आप मुझ तक बह आता है।" 168

अन्यत्र एक स्थान पर वह कहती है —"वेश्या स्त्री का नाम नहीं है। वह व्यवसाय है। मैं स्त्री के नाते अनुभव करती हूँ कि स्त्री माल-असबाब नहीं है। उसने व्यवसाय की चीज़ जिसने बनाया, पातक वहाँ है। सोचने पर मैंने पाया ... कि वह चीज पैसा है, और उसमें डाल दी गयी है क्रय-क्रय शक्ति। एक शब्द में बाजार है, हमारी अर्थ-व्यवस्था है। तो मेरा पहला धर्म हुआ कि मैं कहूँ कि यह नारी-तन पवित्र है, वहाँ से मानव-शिशु को जन्म मिलता

है। वो तुष्टि तीर्थ है। प्रेम में अर्पण हो सकता है उसका। पैसे से बिक्री नहीं हो सकती।"[169] और बिलकुल ऐसी ही बात "त्यागपत्र" की मृणाल भी नहीं करती क्या? यथा — "जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है; यह मेरी समझ में नहीं आता। तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूं। तन दे सकूंगी, शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसे? दान स्त्री का धर्म है। नहीं तो उसका और क्या धर्म है? उससे मन मांगा जाएगा, तन भी मांगा जाएगा। सती का आदर्श और क्या है? पर उसकी बिक्री — न, न, यह न होगा।"[170] तो मृणाल और रंजना का रंग एक है, परिस्थिति-जन्य "शेड" अलग है।

पारमिता :

"दशार्क" उपन्यास की दूसरी सशक्त नारी है पारमिता। यह रंजना का दूसरा रूप है। विक्षिप्ता है। प्रेम में आहत होकर हिंसा के मार्ग पर चल पड़ती है। जैनेन्द्र के कई उपन्यासों में नायक प्रेम में असफल होकर विध्वंसात्मक मार्ग पर चल पड़े हैं। यहाँ पारमिता के साथ यह हुआ है। जैनेन्द्र हिंसा को प्रेम का अभाव ही मानते हैं। जिसे प्रेम नहीं मिलता, जो प्रेम पाने में सफल नहीं होता, वह प्रायः हिंसा के मार्ग पर चल पड़ते हैं। पुराने क्रान्तिकारी या डकैत, या आधुनिक नक्सलाइट लोगों के जीवन का अध्ययन करें तो कदाचित् यही तथ्य सामने आ सकता है। पारमिता ईश्वर, समाज, घर-गृहस्थी किसीको नहीं मानती। प्रेम में आहत होकर वह घर-गृहस्थी की विरोधी हो जाती है। रंजना और मधु के स्नेहिल व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसकी यह गाँठ कुछ पिघलने लगती है, किन्तु किसी दूसरे युवक के सान्निध्य से वह खुश नहीं होना चाहती। यहाँ उसका "इगो" बीच में आता है। इस प्रकार उसका मानसिक गठन अत्यन्त जटिल है। उसका गठन "विवर्त" और "व्यतीत" उपन्यास के नायक जितेन की मानसिकता के करीब है। शेफालिका और मधुरिमा इसके अन्य गौण नारी पात्र हैं।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहजतया पहुँच सकते हैं —

(1) जैनेन्द्र के प्रमुख औपन्यासिक नारी-पात्रों में कट्टो, गरिमा (परख); सुनीता, सत्या (सुनीता); कल्याणी (कल्याणी); मृणाल (त्यागपत्र); सुखदा (सुखदा); भुवनमोहिनी, सिन्नी (विवर्त); अनिमा, सुमिता, चन्द्री, उदिता, कपिला, सुधिया (व्यतीत); इला, लिजा (जयवर्धन); अपरा, चन्था (अनंतर); उदिता, वसुंधरा (अनामस्वामी); नीलिमा, राजश्री, कमारा, अंजलि (मुक्तिबोध); रंजना, पारमिता (दशार्क) आदि की गणना कर सकते हैं।

(2) जैनेन्द्र के औपन्यासिक गौण नारी-पात्रों में कट्टो की माँ, गरिमा की माँ ~~(परख)~~, सत्यधन की माँ (परख); सुनीता की माँ, माधवी (सुनीता); वकील साहब की पत्नी, देवलालीकर की पत्नी (कल्याणी); मृणाल की भाभी, मृणाल की सहेली शीला, राजनंदिनी, राजनंदिनी की माँ (त्यागपत्र); सुखदा की माँ, नौकरानी (सुखदा); मैथिल्डे उर्फ मैथिली (विवर्त); रामेश्वरी, चारू (अनंतर); मंजुला (अनामस्वामी); मधुरिमा या माधुरी, दीपशिखा (दशार्क) आदि की गणना कर सकते हैं।

(3) जैनेन्द्र अनेक नारी पात्रों के संदर्भ में उनके व्यक्तिवाची नाम तक से बचते हैं। वह किसी की माँ या पत्नी कहकर काम चला लेते हैं। प्रेमचन्द में प्रायः इस प्रवृत्ति का अभाव है। वे गौण नारी-पात्रों को भी वैयक्तिकता प्रदान करते हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में चित्रित माँओं के पात्र प्रायः एक प्रकार के हैं। उनको हम वर्गीकृत चरित्र या पत्ता-पात्र (कार्ड-कैरेक्टर) की कोटि में रख सकते हैं।

(4) देशकाल की दृष्टि से प्रेमचन्द के नारीपात्र ग्रामीण एवं नगरीय उभय पृष्ठभूमि के मिलते हैं, किन्तु उनमें आधिक्य ग्रामीण परिवेश का है; विपरीत इसके जैनेन्द्र के नारी पात्रों की पृष्ठभूमि नगरीय अधिक है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में जहाँ तक राजनीतिक दृष्टि का प्रश्न है नारी पात्रों पर गांधीवादी प्रभाव परिलक्षित होते हैं, जैनेन्द्र में भी गांधीयुगीन नारी है, पर उनमें गांध्योत्तर युग की आधुनिक नारी के भी दर्शन होते हैं।

(5) प्रेमचन्द के नारी पात्रों के केन्द्र में कोई जीवनव्यापक समस्या होती है, जैनेन्द्र के नारी पात्रों में प्रायः मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति का प्राधान्य दृष्टिगत किया जा सकता है।

(6) जहाँ प्रेमचन्द के नारी-पात्र "कैरेक्टर्स इन एक्शन" प्रकार के हैं, वहाँ जैनेन्द्र के नारी पात्र "कैरेक्टर्स इन कंटेम्प्लेशन" प्रकार के हैं।

(7) जैनेन्द्र के विवाहित नारी पात्र प्रायः प्रौढ़ या वृद्ध हैं। केवल कट्टो और माधवी जैसी कुछेक युवा किशोरियों को चित्रित किया है, किन्तु वहाँ भी उनकी समस्या केन्द्र में नहीं है।

(8) जैनेन्द्र की नायिकाओं में कट्टो, सुनीता, कल्याणी, मृणाल, सुखदा, भुवनमोहिनी, इला, अपरा, उदिता, वसुंधरा, नीलिमा, रंजना आदि पाठकों का विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं।

(9) जैनेन्द्र के नारी पात्रों में मृणाल, कल्याणी, सुखदा, वसुंधरा आदि में आत्मपीड़ा की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। तिन्नी, बुधिया, मैथिली, सुनन्दा, मृणाल, कल्याणी जैसे नारी पात्रों में सेवाभावना की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से देखी जा सकती है।

(10) जैनेन्द्र के कुछेक नारी पात्र तो संभावना के क्षेत्र में आते हैं। ऐसे पात्रों की संभावना को हम नकार नहीं सकते।

§11§ जैनेन्द्र के नारी पात्र अपने व्यक्तित्व में सशक्त, आत्मव्यथा में तेजस्वी, पुरुष पात्रों की कुण्ठा का उपचार करने वाले तथा उसके अहं को गलाने वाले हैं। ऐसे नारी पात्रों में क्रमशः सुनीता, भुवन, अपरा, नीलिमा, रंजना आदि का उल्लेख कर सकते हैं।

§12§ जैनेन्द्र की नारी उनके उपन्यासों की मूलशक्ति है। पुरुष की सारी कुण्ठा, मन की गांठ उसी को लेकर है और नारी भी उसका उपचार उसके प्रति निःस्वार्थ, करुणापूर्ण समर्पण द्वारा खोजती है।

§13§ जैनेन्द्र की अधिकांश नायिकाएं प्रेयसी और पत्नीत्व के द्वन्द्व में झूलती रहती है। ऐसे नारी पात्रों में भुवन, सुखदा, अनिता, वसुंधरा, नीलिमा आदि को ले सकते हैं।

§14§ यहाँ रामेश्वरी और राजश्री जैसी प्रौढ़ एवं परिपक्व नारियां हैं जो अपने पतियों के अन्य स्त्रियों से प्रेम-व्यापार को न केवल उदारतापूर्वक देखती हैं, प्रत्युत कई बार उसमें सहायक भी होती हैं।

§15§ जैनेन्द्र के कई उपन्यासों में पति अपनी पत्नी को विवाहेतर प्रेम-संबंधों में सहायक भी होता है। सुनीता, सुखदा, विवर्त, अनंतर, मुक्तिबोध आदि उपन्यासों में उसे देखा जा सकता है।

§16§ जैनेन्द्र के नारी पात्रों में रंगों की विविधता के स्थान पर "शेड्ज" की विविधता के दर्शन होते हैं।

§17§ जैनेन्द्र के नारी पात्र कई बार जटिल, रहस्यमय और उलझाव भरे दिखते हैं। वे प्रायः मुक्त-प्रेम के पक्षधर हैं।

===== XXXXXX =======

:: सन्दर्भानुक्रम ::


§1§ परख : जैनेन्द्र : पृ. 12 ।

§2§ से §13§ : वही : पृ. क्रमशः 44, 53 , 49 , 49 , 51, 51 , 69, 60-61 , 74 , 84 , 101, 100 ।

§14§ प्रस्तुत प्रश्न : जैनेन्द्र : पृ. 64 ।

§15§ " हिन्दी के प्रहरी : जैनेन्द्र : डा. रमेश जैन : पृ. 234 ।

§16§ परख : जैनेन्द्र : पृ. 18 ।

§17§ से §23§ : वही : पृ. क्रमशः 64 , 28 , 82 , 85 , 89 , 37-38 , 40 , ।

§24§ सुनीता : जैनेन्द्र : पृ. 14-15 ।

§25§ से §30§ : वही : पृ. क्रमशः 43, 123 , 130 , 162 , 166, 118 ।

§31§ "जैनेन्द्र के उपन्यास : मर्म की तलाश " : डा. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर : पृ. 30 ।

§32§ सुनीता : पृ. 49 ।

§33§ से § 35 § : वही : पृ. क्रमशः 62 , 140-141 , 49 ।

§36§ कल्याणी : जैनेन्द्र : पृ. 29 ।

§37§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 46 ।

§38§ " हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी " : आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : पृ. 192 ।

§39§ कल्याणी : पृ. 39 ।

§40§ से §51§ : वही : पृ. क्रमशः 66, 15, 64, 95 , 94 , 15 , 28, 25 , 128 , 50 , 50 , 52-53 ।

§52§ त्यागपत्र : जैनेन्द्र : पृ. 8 ।

§53§ से §56§ : वही : पृ. क्रमशः 55, 56, 55, 63 ।

§57§ त्यागपत्र : जैनेन्द्र : पृ. 50 ।

§58§ से §61§ : वही : पृ. क्रमशः 54 ,58 ,58 , 64 ।

§62§ हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 132-133 ।

§63§ " जैनेन्द्र के उपन्यास : मर्म की तलाश " : डा . चन्द्रकान्त बांदिवड़ेकर : पृ. 40-41 ।

§64§ त्यागपत्र : पृ. 8 ।

§65§ से §74§ : वही : पृ. क्रमशः 7-8 , 55-56 , 9 , 75 , 74, 75 ,75 , 75 , 71 , 74 ।

§75§ सुखदा : जैनेन्द्र : पृ. 15 ।

§76§ से §88§ : वही : पृ. क्रमशः 15 , 21 , 22 ,24 , 71 , 38 , 67 , 12 , 15 , ,20 ,14 , 9 ।

§89§ त्यागपत्र : पृ. 7 ।

§90§ सुखदा : पृ. 51 ।

§91§ ~~से §80§ वही पृ. क्रमशः~~ विवर्त : जैनेन्द्र : पृ. 7-8 ।

§92§ से §100§ : वही : पृ. क्रमशः 25, 21 ,38 ,25 , 103 , 149 , 74-75 , 76-77 , 164 ।

§101§ व्यतीत : जैनेन्द्र : पृ. 85 ।

§102§ से § 104 § : वही : पृ. 87 , , 83 ।

§105§ द्रष्टव्य : " जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल : डा. विजयप्रभा प्रकाश : पृ. 185-186 ।

§106§ व्यतीत : 29 ।

§107§ से §110§ : वही : पृ. 36 ,58, 59 , 59 ।

§111§ जैनेन्द्र और उनके उपन्यास : डा. खालानी : पृ. 99 ।

§112§ द्रष्टव्य : " जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल : पृ. 188 ।

§113§ से §116 § : व्यतीत : पृ. क्रमशः 77 , 71 ,16 ,16 ।

[117] "जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल : डा. [illegible] प्रकाश : पृ. 191 ।

[118] व्यतीत : जैनेन्द्र : पृ. 19 ।

[119] और [120] : वही : पृ. क्रमशः 21 , 22 ।

[121] जयवर्धन : जैनेन्द्र : पृ. 94 ।

[122] से [128] : वही : पृ. क्रमशः 94-95 , 95 , 96 , 210 , 76 , 206 , 132 ।

[129] " जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल : पृ. 203-204 ।

[130] अनंतर : जैनेन्द्र : पृ. 124 ।

[131] से [137] : वही : पृ. क्रमशः 83, 83, 16 , 17 , 37 , 37, 26 ।

[138] " जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल " : पृ. 222 ।

[139] और [140] : अनंतर : पृ. क्रमशः 111 , 115 ।

[141] अनामस्वामी : जैनेन्द्र : प्रबंध के लेख से ।

[142] वही : पुनश्च से ।

[143] अनामस्वामी : पृ. 123 ।

[144] से [150] : वही : पृ. क्रमशः 66, 66 , 67 , 178 , 214-215 154 , 213 ।

[151] मुक्तिबोध : जैनेन्द्र : पृ. 66 ।

[152] से [159] : वही : पृ. 48, 53-54 , 86 , 108 , 7 , 37 , 57 , 49-49 ।

[160] हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डा. [illegible] देसाई : पृ. 135 ।

[161] मुक्तिबोध : पृ. 24 ।

[162] से [167] : वही : पृ. क्रमशः 24 , 70 , 4-5 , 5 , 108, 108 ।

{168} कल्याणी : जैनेन्द्र : 179-180 ।

{169} वही : पृ. 189-190 ।

{170} त्यागपत्र : जैनेन्द्र : पृ. 54-55 ।